विपाशा

वर्ष १/अंक ६/जनवरी-फरवरी, १९८६

भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश का प्रकाशन

मूल्य [illegible]

आवरण : मुख पृष्ठ : पत्थर पर उगता वसन्त (पहाड़ की चट्टान पर उगी काई); दूसरा पृष्ठ : रेखांकन : सुरजीत; अन्तिम पृष्ठ : भीमाकाली मन्दिर परिसर-सराहन का एक दृश्य; मुख पृष्ठ तथा अन्तिम पृष्ठ की पारदर्शी : हाकम शर्मा

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी

मुख्य संपादक
श्रीनिवास जोशी
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि०प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
शिमला 171 001; दूरभाष : 3669

वार्षिक शुल्क : छः रुपये, एक प्रति : एक रुपया

क्रम

पाठकीय

चौथा अंक

डॉ. चमनलाल गुप्ता (शिमला) : विपाशा जैसी सुरुचिपूर्ण एवं उपयोगी पत्रिका निकालने के लिए बधाई। इसकी प्राणवत्ता बनी रहे। जो अंक मैं अभी तक प्राप्त कर पाया हूं उन्हें पढ़कर लगा कि यह पत्रिका सही अर्थों में भाषा-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों की 'निधि' हिन्दी प्रेमियों को सौंपने की ईमानदारी प्रशंसनीय है। निश्चय ही सामग्री पाठकों को पसन्द आई है।

हरवन्स धीमान (चंडीगढ़) : विपाशा में हिन्दी साहित्य के धुरन्धरों की सामग्री 'निधि' के रूप में क्रमिक जा रही है, यह अच्छा है।

प्रेम पखरोलवी (शिमला) : मैंने विपाशा के दो तीन अंक पढ़े। पत्रिका मन को भाती है। रचना चयन एवं साज-सज्जा हर लिहाज़ से प्रभावित करती है।

प्रकाश गुप्त (दिल्ली) : विपाशा के इस अंक में निराला जी को लेकर दी गयी सामग्री उनके कृतित्व की ओर प्रेरित करती है। विशेष रूप से डॉ. रामविलास शर्मा का लेख देकर अच्छा किया क्योंकि निराला जी पर उनका काम बहुत उपयोगी है।

बलवन्त शर्मा (चंडीगढ़) : मालचन्द तिवाड़ी की कहानी और देव बड़ोतरा की कविता इस अंक की उपलब्धि कही जा सकती है। 'टिकुड़ी' का रूघले को मनाकर मोहन के भायले का नाम पूछने के लिए भेजना अमिट छाप छोड़ता है। यह कहानी ग्राम मन को इतनी सूक्ष्मता से पकड़ पायी है। लेखक को बधाई।

राम प्रसाद शर्मा (दिल्ली) : विपाशा में विशुद्ध साहित्यिक अभिरूचि की सामग्री पढ़ने को मिल रही है। सुन्दर लोहिया और मियां गोवर्धन सिंह के लेख हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर के परिचायक हैं। इस तरह की सामग्री शोधार्थियों के लिए देते रहा करें। श्री लोहिया का लेख खासे श्रम और लगन से लिखा गया है- जबकि श्री गोवर्धन सिंह का लेख अनुपलब्ध सूचनाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

रघुवीर सिंह (सोलन) : अश्वेत कवि बेंजामिन को लेकर हिमाचली कवियों की कविताएं इस क्षेत्र के सार्वभौमिकता के साथ जुड़ने की प्रमाण कही जा सकती हैं। दमन और क्रूरता के खिलाफ विश्वव्यापी विरोध होना ही चाहिए। यही मानवता के कल्याण के लिए आवश्यक भी है।

संपादकीय

संस्कृति का एक वर्ष

इस अंक के साथ ही 'विपाशा' का एक वर्ष पूरा हो रहा है। लेखकों व पाठकों ने इसमें जिस क़दर रुचि ली है यह निश्चित रूप से उत्साहवर्धक है। अनेक लेखकों का रचनात्मक सहयोग हमें मिला और लिखित-अलिखित सुझाव भी बराबर आते रहे। लेकिन चयन के लिए भरपूर सामग्री का अभाव हमेशा खटकता रहा। बावजूद इसके एक संकल्प के साथ बराबर यह कोशिश रही कि किसी न किसी स्तर पर उपयोगी सामग्री पाठकों के लिए जुटायी जाए। रचनाकारों के सहयोग से इसमें कहां तक सफल हो सके हैं यह सब सामने ही है।

यह वर्ष इस प्रदेश के लिए सांस्कृतिक गतिविधियों का वर्ष रहा। यह महज़ इसलिए नहीं कि एक सरकारी पत्रिका का संपादकीय लिखा जा रहा है, बल्कि इस अवधि में जो कार्य हुए हैं वे एकदम हवाई न होकर अपनी पूरी सार्थकता के साथ प्रमाण के तौर पर मौजूद हैं। जहां एक ओर वर्षों से चली आ रही संस्कृति सम्बन्धी योजनाओं का परिष्कार के साथ विस्तार हुआ है, वहां संस्कृति के विभिन्न पक्षों को लेकर दृष्टि सम्पन्न नयी योजनाओं का सूत्रपात भी हुआ है।

हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा पहाड़ी भाषा-साहित्य सम्बन्धी राज्य स्तरीय आयोजनों के साथ-साथ जिला स्तर पर भी ऐसे आयोजन शुरू किए गए हैं। शिमला में आयोजित रंग कार्यशाला, नाट्योत्सव नाटक लेखक सम्मेलन तथा लोक नाट्य उत्सव जैसे आयोजनों से इधर के रंगमंच में एक नयी चेतना का संचार हुआ और वर्षभर नाटकों के मंचन लगातार होते रहे। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत प्रदेश के कलाकार दलों ने गुजरात तथा प. बंगाल का भ्रमण किया और भारत महोत्सव पेरिस में भी भाग लिया। मिज़ोरम के दल ने हिमाचल प्रदेश का भ्रमण किया।

कला की विभिन्न विधाओं की प्रदर्शनियां लगाई गयीं। प्रदेश के कलाकारों की दिल्ली में लगाई गयी प्रदर्शनियां राष्ट्रीय स्तर

पर चर्चित रहीं। चम्बा में भूरि सिंह संग्राहलय के नये विशालभवन तथा शिमला में राज्य अभिलेखागार की स्थापना जैसे कार्य अपना महत्व रखते हैं। प्रदेश व्यापी भाषायी एवं सांस्कृतिक सर्वेक्षण के अतिरिक्त प्रदेश का ज़िलावार पुरातात्विक सर्वेक्षण सिरमौर से शुरू किया गया है।

प्रादेशिक सीमाओं से बाहर निकलकर इस वर्ष अनेक ऐसे आयोजन हुए जिनकी वजह से राष्ट्रीय सांस्कृतिक नक्शे पर इस पहाड़ी प्रदेश की पहचान कायम होने लगी है। हरियाणा-हिमाचल साहित्य संवाद, विपाशा कथा शिविर, शिखर रचना शिविर, प्रथम नाट्योत्सव, अ. भा. नाटक प्रतियोगिता, अ. भा. कला प्रदर्शनी, कुल हिन्द उर्दू मुशाअरा तथा अंग्रेज़ी कवि सम्मेलन आदि कुछ ऐसे महत्वाकांक्षी आयोजन प्रदेश के विभिन्न भागों में सम्पन्न हुए हैं जिनमें प्रदेश के रचनाकारों के साथ देश के विभिन्न भागों के रचनाकारों ने भी भाग लिया। कुल मिलाकर इन गतिविधियों से एक तरह का रचनात्मक संवाद शुरू हुआ है जिसकी सार्थकता को नकारा नहीं जा सकता।

जोगेन्द्रनगर (ज़िला मण्डी) में आयोजित तीन दिवसीय 'विपाशा कथा शिविर' के पहले दिन पढ़े गये तीन उपन्यास अंश, उन पर हुई बहस के सार के साथ इस अंक में दिये जा रहे हैं। इस शिविर में पढ़ी गयी कहानियां आगामी अंक में दी जाएंगी। समकालीन कथा साहित्य को लेकर आयोजित यह शिविर अपनी तरह का एक स्मरणीय रचनात्मक अनुभव रहा। तीन दिनों तक लगातार रचनाओं का पाठ हुआ और प्रत्येक रचना पर समकालीन रचनात्मकता के सन्दर्भ में खुलकर बहस हुई। निश्चित कार्यक्रम के अतिरिक्त अलग-अलग कमरों में भी रचनाएं पढ़ी-सुनी जाती रहीं। इन दो अंकों में जा रही सामग्री देने में हमारी यह कोशिश रहेगी कि शिविर के इस सारे सृजनात्मक अनुभव को पाठकों तक अधिकाधिक पहुचाया जा सके। इसके साथ ही कुछ नियमित सामग्री भी रहेगी।
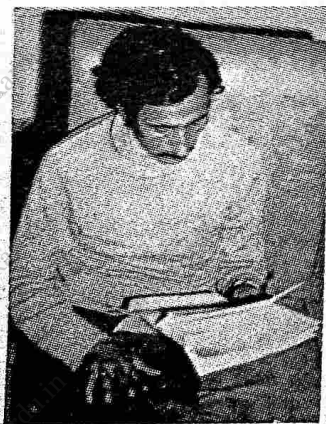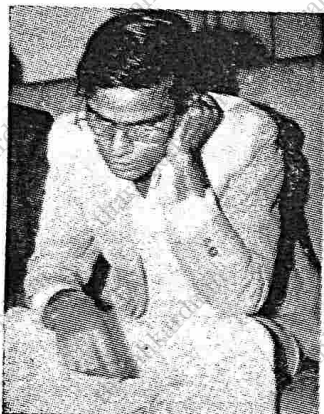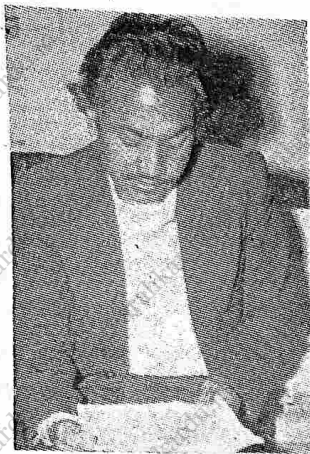
"मैंने दुनिया का अन्त बहुत करीब से देखा है। अपनी अहंमन्यता या सनक में डूबे कुछेक पापी महज़ अपने सामान्य से स्वार्थ के लिए दुनिया को श्मशान बना जाएंगे। फिर कोई मसीहा बचाने नहीं आएगा। हमने इस सत्य को पहचाना, मगर तब तक देर .. वक्त रहते तुम भी सावधान हो जाओ, डूबकर मरने वाले माइनरों का आखरी अनुभव है। .."

—संजीव

"आज की दुनिया में नाना-नानी के वैसे स्नेह की फेनिल बौछारों से बच्चों को भिगो सकने वाले लोगों की संख्या दिनों-दिन कम होती जा रही है। इतनी कम कि हैवानियत की विषैली हवाएं मनुष्य के बचपन को वहकाकर कहीं ऐसी दिशा में ले जा रही हैं जहां उसके समुचित विकास की सम्भावनाएं बहुत कम हैं।"

—बलराम

"कमरे समा जाते हैं एक आकार में। यह आकार चार-दीवारों पर पड़ी एक छत नहीं। चार खम्भों पर खड़ी एक छत है। हवाघर। जिस पर किसी के नाम की तख्ती नहीं। जिसमें खिड़कियां नहीं। हवा चहलकदमी करती हुई निकलती है। आर-पार। पर्दे नहीं। धूप भर जाती है। खिलखिलाती हुई धूप।"

—केशव

उपन्यास अंश : एक

दो कहानी संग्रहों के अतिरिक्त संजीव के अब तक 'किसन गढ़ के अहेरी' तथा 'सकर्स' दो उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। अन्वेषण के स्तर पर जीवन में गहरे उतरकर रचना करने वाले संजीव अलग-अलग पेशों से जुड़े जीवन की सच्चाइयों को अपने लेखन के जरिये सामने लाते रहे हैं। संजीव का तीसरा प्रकाशनाधीन उपन्यास 'सावधान, आगे आग है' पश्चिम बंगाल के कोयलांचल पर आधारित है, जिसके इस अंश में कोयला खदानों के जमीन के भीतर एयर पॉकेट में जिंदगी और मौत के बीच जूझते हुए इक्कीस दिनों का दहशत भरा प्रसंग है।

इक्कीस दिन लम्बी मौत

□ संजीव

अचानक गर्दो-गुबार का इतना जबर्दस्त झोंका आया कि वे लगभग फेंक दिये गये। थोड़ी देर पहले, दीपावली का भ्रम उपस्थित करने वाले लैम्पों में से कुछ तो पत्तों की तरह बुहार दिये गये। पैनल में हवा का वह भयंकर दबाव था कि लगता था, अंग-अंग कटकर चिथड़े-चिथड़े हो जायेंगे। सबके सब बदहवास, जैसे मिरगी आई हो उन्हें। होंठ, कान-आंख और गुप्तांगों से खून रिसने लगा था। धंस गयी थी पानी की दीवार अचानक बन्द हवा का प्रतिरोध पाकर। इसी पानी को सकते की हालत में देख रहे थे सब। उधम का दिमाग बड़ी तेजी से चल रहा था : उसने हड़बड़ाकर सबसे पहले लैंपों को इक्ट्ठा किया। दस में अभी भी तेल था और वे रिलाईटर से जल सकती थीं बाकी नाकाम हो गई थीं।

अब उसकी कैप लैम्प चेहरों की ओर घुमी। उसने एक-एक के नाम लिखे डायरी में-उधम सिंह, सोमारू, कलीमुदीन सूफी, गोकुल माझी, सूखन बाउरी, झानू बाऊरी, मोहन यादव, सोना, शालिग राम दुबे, मुकीद, परभू राय पुरिया, भभूती पासी और मंगतु। कुल तेरह आदमी, दस कैप लैम्प और दस लम्प।

कैंपलैम्पों का ज्यादा भरोसा नहीं। बिना री-चार्ज हुए बैटरी डाउन हो जायेगी कल तक। सो उसने दस लैम्पों को बुझा कर रख लिया। खाना-वाना किसी के पास न था वे अफसोस में हाथ मल कर रह गये।

सूफी ने फिर से गिनती पूछी, "कितने हैं"?

'तेरह'।

उधम का जवाब पूरा होते न होते मुकीद गिरा भरररा-कर। दस कैंपलैम्प बारह नर-मुंड झुक आये मुकीद पर। पानी का छींटा दिया गया, नब्ज टटोली गई, हिलाया डुलाया गया मगर नही। "शॉक खा गया लड़का", वलीम ने कहा और उसकी कैंपलैम्प दीवार की नोक पर लटका दी।

"भाईयो हौसला रखो हौसला। सिर्फ यही हौसला तुम्हें मौत से बचा सकता है," उधम ने कहा।

"हौसला। हौसला।। हौसला।।।" प्रतिध्वनि मंडरा उठी मौत के ऊपर। ड्राईक का मलबा साफ करने के लिए आया ठेका मजूर मुकीद आज खुद मलबा बन गया। इस मलबे को एक खोह में रख कर वे वापस आये तो कोल-डस्ट, खून-पानी, पसीने और आंसुओं से तर उस मृतात्मा की कैंप की आंच में पिघलने लगे बारह आदमी। उधमसिंह ने कलम खेली और मुकीद का नाम काट कर तारीख लिखी। यह देखकर अपनी मौत की शिनाख्त हो आयी लोगों को सोमारू रोते-रोते बोला, "हे मैया, कौन पाप किये थे। ...... मारने को बहुत मौका मिलेगा मैया। हम मर गये तो हमरी मुगियां को कैं देखेगा?"

इस कुरूप क्रन्दन पर सबकी छाती फटी जा रही थी। एक करुणा से उद्वेलित सहस्र करुणा की चिन्गारियां सिसकियां लेने लगीं।

सबको अपने-अपने बाल-बच्चे, माता-पिता, भाई-बहन, यार-दोस्त रिश्तेदार याद आने लगे। असहायता के समुद्र में कंठों का दम फूलने लगा अरे बाप! अब क्या होगा अब? अब?

एक पल को भी हटती नहीं कईयों की नजर पानी की दीवार से। बंद चूहेदानी के चूहे-से पस्त चेहरे। यह इतनी बेरहम सजा है, ऐसी घुटन कि जिसके सामने दुनियां की सारी सजाएं फीकी हैं। प्रार्थना के भजन गाते-गाते गालियां बकते हुए मुट्ठियां भींच कर अवश आक्रोश तड़प उठता है रह-रह कर।

"मैं अगर बच गया तो साले मैनेजर की मूंडी तोड़ दूंगा।" और भगनू बाउरी खुद का सर दीवार में दे मारता है।

"स्साले, हम बोलते रह गये कि काम नहीं करेंगे, नहीं करेंगे जब इत्ता पानी निकल रहा है, मगर स्साले ने गुल्ली की ठंसानी दिलवा ही दी और चमचे पाठक राम...........।"

"क्या मिला तुमको चमचागिरी करके ......। खुद तो गये ही ले गये हज़ार और भी बेकसूर आदमियों को।" सोमारू पहली बार गुस्से में आया है।

"अरे भैया नीचे वाले तो जान भी न पाये होंगे।"

"हम भी तो बाई के झोंक में भागे।"

"हम तो उसकी बेटी को......दोगला स्साला। मंगतु फुफकारा।

"ना भैया हम अगर बच गये तो माफ कर देंगे सबको।"

"अरे हमरा बेटिया मर जायेगी रोते रोते।" सोमारू फिर सिसकने लगा।

"हमरा मैया तो सुनते ही बेहोश ...।" मान्झी ने कहा।

"चानक पे सर पटक रहा होगा सब।" भभूती बिलख पड़ा।

"हे भगवान हमीं को मारना था ... जो खाना खाने के बहाने, फांकी देकर चला गया, जो आया ही नहीं, सब बच गया। ... हमीं तो ड्यूटी के पाबंद थे न तो मरो अब। ... और कहो मस्का बाजी। कंपिनी तुमको सोना से मढ़ देगा।... साला हम लुचे हैं, तनिकों कड़ा पड़ें होते तो बहुत करता, निकलिने न देता। इस तरह तो नहीं मरते।" विलाप के अलग-अलग स्वर हैं।

उधम को यकायक ख्याल आया। उसने डायरी में मैनेजर भट्ट के आदेश पर माइनिंग सरदार पाठक की उसानी देने की बात और प्लावन की विभीषिका को सोच-सोच कर दर्ज किया।

उधर मर्मांतक चीख-पुकार मची हुई थी जैसे सब के सब मृत्यु की भंवर मे डूब रहे हैं।

हालांकि वह खुद भी बेतरह डरा हुआ था, फिर भी खुद को और अपने साथियों को इस भंवर से उबरने के लिए दूसरे बहाने तलाशने जरूरी समझे। उसने अपनी पगड़ी खोली; पैंट, शर्ट और बनियान तक खोल कर फैला दी। हवा के दबाव में इधर बहशियत गाढ़ी हो रही थी। जब उससे नहीं रहा गया तो डांट पड़ा, "अरे बुज़दिलों ऐसे तो मौत से पहले मर जाओगे तुम सब। तुम्हें मालूम है, यहां तुम सब अभी कई दिन तक ज़िन्दा रह सकते हो।"

"ना भैया, पानी आ जायेगा।" सोमारू रोने लगा बच्चे की तरह। "हम कहते हैं, नहीं आयेगा।" उधम ने ज़ोर देकर कहा।

"तनी समझाओ हमको।" वह पांव पर गिर कर गिड़-गिड़ाने लगा। उधम सिंह ने रोक लिया उसे, "यकीन करो चाचा, पानी यहां नहीं आयेगा। हम सब एयरपाकेट में फंस गये हैं। जब तक इस सुरंग की बंद हवा को बाहर निकलने का मौका नहीं मिलेगा तब तक हमें बंद हवा के दबाव में अपने को बचाये रखना है। रैस्क्यूपारटी एक दिन हमें निकाल कर बाहर ले जायेगी।"

"कोई रिस्कू-फिस्कु नहीं।" झानू उदास हो गया।

"तुम समझते हो ऊपर के सारे आदमी मर गये हैं।" सोना ने प्रतिवाद किया। "ऊपर" मंगतु ताकने लगा छत से टकरा कर घायल हो गई नज़र, "हमको यकीन नहीं है भैया।"

"ऐ कान लगा के तनिक सुनो तो रैस्क्यूपारटी वाले आ गये लगता है।" सूफी ने उधम को कोंचा।

कान दीवार से सटाते ही ठक-ठक की आवाज़ों का आभास हो रहा था।

"सुना!"

"हमने सुना। हमने भी......।" परभू पहली बार बोला था सोमारू को, "कम सुनाई पड़ता है, अपने बहरेपन पर खीझ रहा है।"

इस बार इधर जवाबी अवाज़ें दी जाने लगीं।

"ऐ, एक काम करो। एक-एक आदमी पारा-पारी आवाज देगा।" भभूती ने एक नया आइडिया दिया और सबने मान लिया।

उधम ने अपनी डायरी में लिखा।......

२६ दिसम्बर : "आज पहला दिन चीख-पुकार, दहशत और उत्तेजित बातों में बीता। शालिग राम दुबे, मोहन यादव, कलमुदीन सूफी तो पैनेल में काम कर रहे थे। ठेकेदारी मज़ूर मुकीद, सोना, झानू, भभूती, परभू, गोकुल, माझी, चन्द्रकिशोर सिंह के ठेके में डाईक ब्लास्ट करने के बाद मलबा साफ कर रहे थे। मंगतु, सोमारू मिस्तरी, सूखन बाउरी और मैं भाग कर यहां पहुंचे थे। मुकीद के मर जाने पर बाकी बचे बारह...। आज सब अपने-अपने पिछड़े परिवारों की याद से रो रहे हैं। किसी को भरोसा नहीं कि बच पायेंगे। हवा का जबर्दस्त दबाव और उमस है...। कहीं से ध्वनि संकेत आ रहे हैं दीवारों से। लगता है कुछ और अभागे हैं हमारी तरह।"

२७ दिसम्बर : घड़ी से लगा यह दूसरा दिन है, जबकि लगता था दिन बीता नहीं। अभी सहसा हमारे रोंगटे खड़े हो गये, यह क्या बेटरी डाउन हो गयी।

कैप लैम्प दगा दे रहे थे। उनकी ज्योति स्टेज के फोकसलाईट की तरह क्रमशः धीमी पड़ती जा रही थी। अब उन लैम्पों का ही सहारा है जिनमें से एक-एक को एक-एक दिन जलना है। क्रमशः माहौल भूतीलो परछाइयों से ग्रस्त होता जा रहा है, जैसे आईने में बाल उग आये हों। इस समय चंदनपुर में सुबह हो रही होगी और हम सूरज की एक किरण तक के लिए तरस रहे हैं। आज मां की बड़ी याद आई मगर सिलसिलेवार कुछ सोच नहीं पाया। हर पल कोई न कोई चीखता रहता है। डर सरसराता रहता है कोई किसी की हत्या न कर दे।

२८ दिसम्बर : भानू ने चुन-चुन कर गालियां दी मैनेजमैंट को, सिंह त्रयी, को और बभीखन राय को साऊथ लेबरकालोनी वालों को उसने मउगा कहा तो मोहन यादव बिगड़ गये। सबके रोकते-रोकते दोनों भिड़ गये अंगार डीहा प्रकरण पर। बड़ी मुश्किल से दोनों को अलग किया जा सका। इससे तटस्थ होकर सूखन बाउरी, सूफी और दुबे ईश भजन में या रोने में लगे रहे।

२९ दिसम्बर : भूख अब कोई, बहाना नहीं सुनती। भूख की अलग-अलग प्रतिक्रियायें। ... सोमारू अपनी ऊंगली चबा बैठा कि लोग भला बुरा कहने लगे। वह कराह रहा है। ... पानी की दीवार से भर पेट पानी पीकर कइयों को पेट में धक्का लगा और लौट गये।

३० दिसम्बर : आज पता नहीं कब यादव और भानू मिलकर सूखन को पीटने लगे। वह चूहे की तरह कांप रहा था।

स्साला दारू पिया-पिया के सबके नस में दारू भर देहलस। अतना अनियाव और अतियाचार पें कौमोसार के बुद्धि बचवे ना कईल कि विरोध करें। बोलाव साला बुझारथा के बचावे तोरा...।

सूफी और दुबे बचाने गये तो धक्के खा कर गिरे। शायद मेरे समझाने पर दया आई भानू और यादब को, छोड़ दिया उसे।

३१ दिसम्बर : आज एक विचित्र सपना देखा उधम ने, जसविन्दर बचनसिंह के आगोश में थी। उसे देखते ही सहम गई बहन। बचन नशे में अपनी भद्दी शक्ल लिये उठ खड़े हुए। "पुत्तर, वो ऐसा हुआ कि मुझको तो पंजाबी लड़की देने से रहा सो" ...

"तो क्या तूने ही उठा लिया था इसे झरिया से ?" उधम ने गुस्से में खौलते हुए पूछा।

"हां मैंने ही। पूछना, कोई तकलीफ दी तेरी भेण को ? मैं पंजाबी सुनने को तरस गया था पुतरा। क्या करता ?"

दृश्य-काल के असंबद्ध सूत्रों में उलझा वह अभी सोच भी नहीं पाया था कि वह क्या करे तब तक एक ढेला तड़ाक से लगा सर पर...खुल गयी नींद, चारों ओर से ढेले बरस रहे थे। पूरा का पूरा गृहयुद्ध। मारने वाला खुद को छोड़ कर बाकी सबको पापी समझ रहा है। भूख कमजोरी, तापमान और दबाव ने उनकी संज्ञा हर ली थी।

"बन्द करो ढेलेबाजी, वरना एक-एक का मुंह तोड़ दूंगा ..." उधम वहीं से चीख पड़ा, ढेलेबाजी बन्द हो गई।

"सब जाकर पानी पी आओ और हाथ-मुंह भी धो आओ।"

आश्चर्य, एक-एक कर सब पानी की ओर बढ़े, सिखाये गये पशुओं की तरह। लौट कर वहीं से आते हुए दुबे की रामधुन शुरू हो गई है। सूफी समेत बाकी लोग दुहराने लगे। उसने ३१-१ की डायरी से स्वप्न के अंश को काटा, मगर दरके शीशे-सा वह और भयावना लगने लगा अब... ? उसने तय किया कि अब संक्षेप और सूत्र वाक्यों में लिखेगा वह।

पहली जनवरी : नये साल की शुरूआत सूखन बाउरी की मौत से हुई। मंगतु को छोड़ कर उसके पास कोई न था। वे या तो सो रहे, रो रहे थे या कीर्तन कर रहे थे। मंगतु ने कई बार चीख कर उसकी मौत की सूचना दी, जब कोई न आया तो चुप हो गया। अचानक, गुमसुम बैठा मंगतु भड़क पड़ा ज्वालामुखी की तरह, "कोई देवी-देवता नहीं है कहीं। सब झूठ है, सब झांसा। वे स्साले हमें जमपुरी में भेज कर मौज-मार रहे हैं।"

'चुप-चुप,' देवी-देवता नांय होते तो ... तो तू का बचल रहता ? इसको बचना कहते हो पंडित ? ज़िन्दा नरक में मरना है यह तो। सूखना मर गया, तुम लोग भी मरोगे, कुत्ते से बदतर मौत। लगाओ गोहार अंधा-बहिरा भगवान को, ऊ सार......।"

सूखन की मौत पर कुछ सरगोशियां उभरीं, कई उठ खड़ हुए, मगर दुबे की गुराहट सब पर हावी हो गई, "देखी तो, ईसखा को अब ? कान में ऊंगल डालो सब कोई, हरिहर नन्दा सुनइ जो काना—धोई पाप गऊ-घात समाना।

देख-देख अवइयो सार गुनिया रहा है । सुखना सार पापी था, एक पापी मरा ई सार दोसर का पापी है ।" उन्होंने कानों में ऊंगली डालकर-ललकारा, "मारकर फैंक दो साले को ।"

बस, आव देखा न ताव, सूखन की लाश की ओर जाते हुए लोग पलट पड़े मंगतू की ओर ।
लिखा !

पहली जनवरी : लोग विक्षिप्त हो रहें हैं......?

दूसरी जनवरी : आज रात को सपने में केतकी मिली, गले में बांहें डाल कर पूछ बैठी, तुम गुपचुप क्यों ताकते हो, उसकी उजली साड़ी तितली के पंख-सी सहला रही थी। तभी उसने देखा कि यह वह नहीं, आशीष था, फिर देखा कि आशीष के एक ओर स्वाती कपालकुण्डला थी और दूसरी ओर केतकी......। छेदी और मेवा ने उसे पकड़ रखा है । गोकुल की मां आकर दोनों को एक-एक डण्डा मार कर हांकती है, न न गोकुल की मां नहीं, उसकी मां......। उसने सोचा, उसी की तरह हर कोई सपना देख रहा है। मंगतू इंजिरिया से रोज़ बात करता है । प्रौढ़ों के सपने भिन्न हैं, जैसे सूफी को आज देवी ने दर्शन दिये, वह सब को बता रहा था, "भौरे-भौरे का सपना था......।"

"यह तो दोपहर का एक बज रहा है ।" उधम ने अपनी घड़ी दिखाई।

"तू ही सब जाने है," अपनी बात के कहने पर पिनक गया है सूफी । अपनी बिरादरी से उसे जाति-च्युत करके वह फिर बताने लगा, "देखो, देवी की महिमा है कि हमारे बदन पर जो दाब लग रहा था, अब नहीं लगता ।"

"सोचो भईया" परभू रायपूरिया ने तसदीक की । इस राज़ को अपने-अपने ढंग से सबके अहसास करते ही फिर से आस्था का सैलाब उमड़ पड़ा । इस युक्ति के आह्लाद में उधम को भी जाति में ले लिया गया, "भैया इन्कार करने से देवता-पित्तर झूठ थोड़े ही हो जायेंगे, सोचो, आ कि हवा का दबाव...... कि जानो, क्या कहते थे ? हां, कैसे कम हो गिया ?"

"कम तो शायद नहीं हुआ उतना, हां हमारा शरीर अभ्यस्त होता जा रहा है ।"

"चुप बे नास्तिक। हम कहे देते हैं, सरदरवा के पाप से सब मरेगा ।" सूफी के कहते ही आंखे बदरंग होने लगीं । उसने चटपट अपनी बात बदली, "भैया मैंने कब कहा कि मां कि दया नहीं । सब उन्हीं की इच्छा से हो रहा है, उन्हीं

की इच्छा है कि हम ज़िन्दा रहें, लेकिन आप घबरा जाते हैं। अरे भैया परीक्षा ले रही है, परीक्षा।"

"ठीक बात।" एक दूसरे को देख कर वे सहमति में सर हिलाने लगे। अब, अब वे सावधान हो रहे थे जैसे कोई खुफिया उनकी हर बात को नोट कर रहा है।

अखंड रामधुन चल पड़ी पंडित शालिग राम दुबे के प्रस्ताव पर। इसमें मंगतू आदि तो हैं ही, कलीमुद्दीन भी शामिल है और उधम सिंह भी।

डायरी में उसने सिर्फ इतना लिखा— "विक्षिप्तता बढ़ रही है।"

तीसरी जनवरी : अखंड रामधुन दो बजे दिन तक खंड-खंड होकर बिखर जाती है। सूफी ने अलग हट कर वहीं पीर बाबा की मजार बनाकर चादर की जगह सबसे पहले अपना गमछा चढ़ाया। रामधुन करने वालों ने एक-एक कर, राम से निराश होकर, पीर बाबा की शरण ली। जिनके पास गमछा नहीं, अपनी कमीज़ चढ़ाई, उधम ने अपनी पगड़ी। मंगतु ने अपने सारे कपड़े उतार दिये और चढ़ा कर नंगा हो गया। देखा-देखी होड़ मच गई। अब सभी नंगे थे। उधम सिंह ने घड़ी देखी चार दिन हो गये।

"अब तो भूख नहीं सही जाती।"

"यहां पानी की दीवार छोड़ कर क्या है? उसी को तोड़-ताड़ कर खाओ।"

शालिगराम दुबे ने मजार के बगल में कपालिनी देवी का आह्वान किया। उन्हें मलाल था कि रामधुन टूटने के कारण सब गड़बड़ हो गया। उन्होंने गज और ग्राह का कीर्तन गाया,—हे गोबिन्दा राख शरण अब तो जीवन हार... हे गोबिन्दा राख शरण......सबने स्वर दिया। फिर बोले, "गज ने भी बैकुण्ठ वासी भगवान को पुकारा, इसलिए भगवान को बैकुण्ठ से आना पड़ा और देर हो गयी। हम भी कैसे उल्लू हैं। ठीक सर पर कपालिनी देवी है और बुला रहे हैं अजोध्या वासी राम और बिहार शरीफ से पीर बाबा को।" वे हंस पड़े सयाने की तरह।

युक्ति सबको पसन्द आयी। आज सब पहली बार हंसे थे। देवता सामूहिक हो गए, "ईश्वर अल्ला, तेरो नाम...आ इन्निल्लाह विशिल्लाह, सर्वमिदं ब्राह्मणं। सर्व मंगल मांगल्ये, दुख: पात्र विनाशिनी ... वाहे गुरू। कौन सो संकट मोर गरीब के जो तुमसे नहि जात है टारो।" सारे मजहबी और जात-पांत के झंझट एक पल में तिरोहित। आदमी अपने शुद्ध रूप में निकल आया है।

३-१ की डायरी में यह सब सूत्र रूप में नोट करते हुए उधम अजीब-सा अनुभव कर रहा था मगर ये स्फूर्ती क्षणिक सिद्ध हुई। उसके सामने रायपुरिया परभू अचानक अपनी ऊंगली चबा बैठा था और दर्द से छटपटाये जा रहा था। सात बजे उसका नाम काटना पड़ा। नाम जैसे एक स्विच था, मक से रायपुरिया बस्ती जल उठी-चांदनी रात-सी धुआंती हुई। परभू की पत्नी रो रही है। सारी बस्ती रो रही है। रोते-रोते केतकी पूछती है "अच्छा नोकरी लगवाये बाबू।"

चार जनवरी : "हल्के उजाले में सब जहां-तहां भूख के मारे निश्चेष्ट पड़े थे कि दुबे दिलासा देने के लिए दूसरी कहानी शुरू करता है, "एक दफा लक्ष्मी महारानी ने विष्णु भगवान को चैलेन्ज दिया, आप सबका भरण-पोषण नहीं करते। विष्णु भगवान हंस दिये अपनी मोहिनी मुस्कान से। लक्ष्मी महारानी ने भी मन ही मन ठान लिया, आपको झूठा साबित करके रहूंगी। दूसरे दिन उन्होंने एक चींटी को डिबिया में बंद कर अपने पास रख लिया। भगवान सोने को आये तो "बैग" से पूछा, "सबका भरण-पोषण हो गिया ?" विष्णु भगवान की फिर वही मोहिनी मुस्कान। झूठ दिखाने की गरज से चट से डिबिया खोल दी, मगर खुद वही हैरान हो गयी, देखा तो चींटी के मुंह में शक्कर का दाना था।"

अब कहां गये आपके भगवान......। कहां है, कहां कहां —...। सोये मुर्दों में बिजली की गति से जान आ गई हो जैसे। भर-भरा कर उठ पड़े सब। "मारो सारे पंडितवा को, बरगलाता है। पिल पड़े सब पंडित पर। इस बार हाथ पांव से नहीं, ढेलों से।"

"रुको, नहीं तो एक-एक को ठीक कर ठंडा कर दूंगा।" उधम ने डांटा। रुक गया ढेलों का शब्द : हांफने और कराहने का सिलसिला शुरू हो गया। उसे अपने चिड़चिड़ेपन पर आश्चर्य हुआ। क्या सचमुच वह भी मृत्योन्मुखी हो रहा है। "सुनो, यह हवा के दबाव के कारण है। हिमालय पहाड़ पर जहां हवा बहुत कम है न, ऐसा ही पागलपन का दौरा आता है कभी-कभी।"

"चौप साला सरदार। सब साले पापी हैं। पापी न होते तो कभी के नरक पाप में फंसे रहते। धरमी-धरमी पार उतार गये, पापी डूबे बीच मंझधार।" सदा आदर से बात करने वाले पंडित शालिगराम उसे डांट रहे थे। "हां हो पंडित जी, जो साला बचा है, सब धरमात्मा हैं, कहां हैं गजाधारसिंह, चन्द्रकिशोर सिंह, भट्ट, चटर्जी, तिवारी, भभीखन राय!" मंगतु ने कहा मगर वह

भी मोहन की टिप्पणी से बच न सका, "मरा कौन तो, ई बेचारा मंगतू आ...।"
"सिंह जी का लौंडा : लौंडा।" जाने कहां से स्फूर्ति आ गई है सब में। अश्लील हरकतों पर उतर आते हैं। कामात्त कुत्तों की तरह उसके पीछे पड़ा नंगे बहशियों का दल दौड़ रहा है। आश्चर्य, उसमें सोमारू को और उस को छोड़ कर सब हैं, दुबे और सूफ़ी तक...। मंगतु भागते-भागते रुक कर एक बड़ा पत्थर उठा कर ललकारता है, "आओ सालो..।" खिसियाहट में वह मुंह से फैन फैंकता हफस-हफस कर रहा है।

मंगतु का कन्धा थपथपा कर उधम ने कहा, "उदास होने की बात नहीं बड़ा ध्रमो में भी एक थे-जैनुल मिया। एटेंडेंस रजिस्टर में नाम नहीं था, मगर खान के अन्दर से जिन्दा निकले। एक और मिया थे, नाम क्या तो था— वो अपने भाई खलील मिया की जगह पर काम कर रहे थे।"

धीरे-धीरे शिथिल अंगों में जिजीविषा रेंग रही है, "मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है।" "अरे वही होता है, जो मंजूरे खुदा होता है।" शेर बाकियों के समवेत से पूरा हुआ।

उत्तेजना में उठ कर खड़ा हो गया उधम सिंह, "भाईयों यही तलवार की धार का सफर है, अगर कट गये तो ज़ीरो, पार हो गये तो हीरो ... बोलो, बोलो, बजरंग बली की जय। जय कपालिनी माई की। या अली।

उधम ने डायरी में सैक्स की विकृति का संकेत मात्र लिखा, फिर कुछ सोच कर तलवार की धार वाली अपनी उक्ति लिख कर रेखांकित की और दूसरी लैम्प जलायी।

देखते देखते वे कल्पना-विलास में भटकने लगते हैं...... रैस्क्यू पारटी वाले आ गये हैं। एक-एक को कपड़े में लपेट कर बाहर निकाला जा रहा है। यह कपड़े क्यों। वे पानी में डूबे कहां हैं! वे तो एयर पाकेट की बन्द हवा में थे। चमड़े के जैकेट में। ठीक। दबाव के असर को तो ठीक करना ही पड़ेगा न। और लो आंखों पर काला चश्मा......। बाहर ठंड लग रही है। उई। यह क्या मामला है! ना मैया, बस करो, बस करो, बड़ी ठंड लग रही है। अरे दुर घोड़ मुंहा। मन्त्री का मामला है। ऐ रोमांचहो है, ठण्ड से नहीं, खुशी से बाप रे काले चस्मे के बाहर बिजली चमक रही है बार-बार। दुर बौका, नांय तो, खट-खट फोटू उतारे जा रहे हैं। घड़ा-घड़ छप रहे हैं अखबार कागज़ में। यह कौन है......ऐं... मां-बाप, पत्नी-बेटे, बेटी, भाई-भोजाई हित-मित्र, ओ मिल

लेंगे भैया, सबसे मिलेंगे । एक-एक को सीने से लगा कर घण्टों रोयेंगे ।......
डागटर बाबू छुट्टी देवें तब न । ज़रा चौंध खाती इन अन्धी आंखों में
जोत भरने दो, फूलने दो पिचकी नसों को आहिस्ता आहिस्ता ।

आंखों का अंधेरा धीरे-धीरे छंट रहा है, धुंध की परती से झरने लगा
है उजाला धीरे-धीरे, जैसे पौ फटने की उजास । सबसे पहले तो मैया कपालिनी
मैया को गोड़ लेकर जायेंगे । फिर मजार पर जाकर चादर चढ़ायेंगे, गिरजाघर
में प्रार्थना करेंगे, गुरूद्वारे मत्था टेकेंगे । जैतना देवी-देवता, भूत-पिशाच, डाकिनी
डीह, चुड़ैल हैं, सबकी पूजा करेंगे । जहां-जहां जायेंगे, पीछे-पीछे भीड़ जमा हो
जायेगी, "हटो-हटो, देखते नहीं; मौवत के मुंह से निकलकर आये हैं ई लोग ।"

सबसे हाथ जोड़ के बोलेंगे, पंचे का दुआ था, फिर दुनियां देखने को
बदा था । आ गये ।

"फेन साहेब लोग को झाड़ेंगे, "तनी जल्दी करना चाहिये था न । हम
मरिये तो जाते, फेन किसको लेकर जलसा करते हैं आप लोग ।"

"गलती किसी की थी ।" डिल्ली का बड़का आफीसर पूछेगा ।

"अब जाने दो साहेब । हम बच गये, सबको माफ किया ।"

"लेकिन उधम सिह की डायरी...... । उसमें सब लिखा हुआ है ।"

"जाने दो सरदार जी ।"

"कैसे जाने दें । तुम बच गये तो दरियादिल बनते हो, सैंकड़ों मजदूर
घुट-घुट के मरे जो, उसका हिसाब किताब नहीं होगा ।"

४-१ की डायरी में उसने फिर से इन घटनाओं को दर्ज करना चाहा मगर
कमजोरी और स्थानाभाव के कारण उसने सिर्फ सूत्र में लिखा और इसे स्वप्न
विलास की संज्ञा दी ।

पांच जनवरी : शालिगराम दुबे हाथ जोड़ कर सबको प्रणाम करते हैं, कोई
भूल-चूक हो तो क्षमा करना । अब चला-चली की बेर है, कोई जिन्दा रहा तो
हमरा दूनी, चैंगा, मेवा और बदी को समझा देना, "नांय रोयेगा, मिलजुल के
रहेगा, मैया को तकलीफ नोय देगा ।" अचानक कुछ सोच कर सवाल पूछते हैं,
"केतना मुआवजा मिलेगा मरने पर ।"

"पचास हजार धर लो ।"

"मंगतुआ को तो मुआवजा नाहीं मिली"... । गोकुल ने पूछा । मंगतु को
लगता है, वह दूसरी बार पानी में धकेल दिया गया है । इस बार कोई एयर
पाकेट नहीं । छटपटा-छटपटा कर डूबना है । पता नहीं मेहरारू को कोई
खबर मिली या नहीं ।

"हमारा मुआवजा मिलेगा सरदार जी... ।" मंगतु ऐसे पूछ रहा है जैसे उधम को ही मुआवज़ा बांटना है ।

"क्यों नहीं मिलेगा । लेकिन मरने की बात ही क्यों सोचते हो । यह क्यों नहीं सोचते कि रैस्क्यू पारटी अब पहुंचने ही वाली है ।

"खाक" ।

"खाक" बड़ा धैमो खान-दुर्घटना का किस्सा जानते हो......। सन उन्नीस सौ छप्पन की बात है । वहां इतने ज़ोर से पानी बरसा कि खेत में दो-दो फुट पानी खड़ा हो गया, ज़मीन जहां-जहां फटी थी, उसी रास्ते पानी घुसा बरसात का । मैनेजर अंग्रेज़ था । रजिस्टर देखा तो ब्यालीस आदमी गैरहाज़िर । सात-सात मील की गैलरी में पानी, कीचड़, पत्थर और रौले......ग्यारह आदमी फिर भी एयर पाकेट में बचे थे । मछली मेंढक पकड़-पकड़ कर खा के उन्नीस दिन तक पानी में ज़िन्दा रहे । "हिंया तो उहो नहीं" ।

"इसका मतलब है पानी दामोदर से नहीं आया ।"

"का मालूम कहां से आया ।" पंडित शालिगराम घिसटते हुए अपनी एक लैम्प जला कर पानी में मछली-मेंढक ढूंढ रहे हैं ।

"ऐ पंडित । कहा न लैम्प मत बर्बाद करो ।" उधम ने डांटा ।

"जान से बढ़के ई लैम्प हो गया अब ।"

सब के मना करने के बावजूद जाने कब तक बैठे रहे, तब क्या पता था कि संस्कारों की तिलांजलि देकर जो ज़िन्दगी वे ढूंढने आये हैं, वह उनके साथ ऐसा क्रूर मज़ाक करेगी । सर नीचे, पांव ऊपर—पानी के शीशे में जड़ी गैलरी की दीवारों में फ्रेम्ड यह लाश किसकी है । डंडे से खींच रहे हैं......। मुंह अपनी ओर करते ही उस दैत्यनुमा फूली लाश पर सबको कंपकंपी आ गई ।

"भानू" ..? दुबे गिरे और बेहोश !

मगर दुबे की ओर ध्यान जाकर भी लौट आया भानू पर । कलीम ने बताया, "पंडित के पास भानू शायद तीन-चार दिन पहले आया था; बोला, "ऐसे घुट-घुट कर मरने से तो अच्छा है कि कोशिश करें... दो मिनट तक तो सांस रोक ही सकता हूं ।"

"दू मिनट में तो तू इस ड्राइवेज के मुहाने तक भी नहीं जा पायेगा ।" पंडित ने कहा था ।

"मगर मेरा निकलना बहुत ज़रूरी है, निकलने तो दीजिए......।"

"बौरा मत"।

"ऐसे भी मरेंगे, वैसे भी। मगर अगर निकल गये तो......।"

उधम बुदबुदाया, "जाने कब गया, जब हम लोग कीर्तन कर रहे थे तब या जब हम कल्पना विलास में भटक रहे थे तब... ?"

भानू का नाम काटते हुए भी लगा वह अक्षम्य पाप कर रहा है। भानू का नाम काटना एक अन्याय है, भानू की मौत का मतलब है; अंगार डीहा ही नहीं, चदनपुर ही नहीं, इस पूरे देश की जिजीविषा, शौर्य और संघर्ष की एक कोशिका की अपमृत्यु !

डायरी में जब वह पांच और छह जनवरी की घटनाओं को दर्ज कर रहा था, कुछ लोग कपड़े खा रहे थे, कुछ कोयले और कुछ डाईक के चूरे को चरर-चरर चबा रहे थे, जैसे वे इन्सान नहीं कुत्ते और सियार हों।

सात जनवरी : चार का पेट अकड़ गया। छटपटा वे रहे थे। ना-ना करते-करते सोना और गोकुल पेट पकड़ कर तड़पते-तड़पते शांत हो गये। बहुत तेज़ी से हुई थी चार मौतें और उतनी ही तेज़ी से लाशों के अपचयन से आक्सीजन शेष होती जायेगी। तब...? तब क्या वह मछलियों की तरह पानी में घुली प्राण-वायु का प्रयोग करके देखे..... हालांकि वह मछली नहीं था और पानी में प्राण-वायु से ज्यादा मृत्यु घुली हुई थी फिर भी......। उसकी देखा-देखी बाकी भी यही करने लगे।

फिर से शुरू हो गई है प्रार्थनाएं। अब इतनी ताकत नहीं रह गई कि उछल-कूद कर सकें। बैठे-बैठे बलि के बकरों की मिमियाहट ...। प्रार्थनाए मुरझाते-मुरझाते सिसकियों में ढलती हैं। "सब पापी हैं साले। पापी न होते तो राख नरक भोगना पड़ता इस तरह ! और वो भगवान कहां है। सुनता है क्या सीधे-सीधे या तो मार डालो या बचा लो। ये क्या लफड़ा लगाकर रख दिये कि न हम ज़िन्दा हैं न मुर्दा," सूफी नास्तिक हो उठा है।

यादव को अच्छी नहीं लगती सूफी की बड़बड़ाहट, "का बकर-बकर कईले बाड़ अ...अ...बैठ अ...अ...गली से पटा के। गमछवा तनि-हेनियां द-तू तो खईब—अ ना ...।"

कुछ देर पहले से ही दीवार की अवाजें आनी बन्द हो गई थीं। इधर से दीवार पर दस्तकें देते-देते थक गये। लो रहा-सहा आसरा भी टूट गया है। डायरी बंदकर उधम सिंह सर पकड़ कर बैठ गया। लगता है खत्म हो गये आवाज़ देने वाले।

डायरी और ज़िन्दगी में होड़ लगी थी, कौन पहले शेष होती है । कई बार पानी फीकी हो आई स्याही, कई बार पुनः संचित कर जिन्दगी को सींचती आई जिजीविषा... अब दोनों में कोई दम नहीं। फिर भी डायरी हार गई, जि़न्दगी जीत गई। शायद रचना जगत् से वस्तु जगत् महान होता है। उधम को अपने इस अन्वेषण पर कुढ़न हुई । अब...।

मंगतु के पास एक नोट बुक है, गिरवी रखी ज़िन्दगी का बही-खाता ... शायद एक पेंसिल भी ।

मांगने के साथ मंगतु के हाथ टंगी, कमीज़ की ऊपर की जेब में गये, चुपचाप दोनों चीजें हवाले कर दी, "डरो नहीं तुम्हारा हिसाब सुरक्षित है ... ।"

"हिसाब! हुंह ... हंसता है मंगतू, "जिन्दा रहा तो खुद ले लूंगा, मर गया तो ... क्या करेगी डायरी," अस्सी साल के बूढ़े जैसी जर्जर भूतीली आवाज़।

पैंसिल घिस गयी है। दांतों से कुतरता है उधम। कुतरते-कुतरते जीभ को रुचिकर लगता है। अरे आधी पैंसिल तो कुतर कर खा ही गया वह। नहीं बाकी को कंगाल की रोटी की तरह संजोकर रखना है। अच्छा हुआ मंगतु ने इसे नहीं खाया। अब किसी में ताकत नहीं रह गई है। सब चुपचाप उनींदी नींद में मूर्छित से पड़ें हैं। कुछ अस्फुट-सी आवाज़ें कानों में बज रही हैं। पता नहीं, क्या है। शायद अंधेरे में कोई घिसट रहा है।

अब एक ही लैम्प जल सकती है रिलाईटर से, और उसे उसने गाढ़े वक्त के लिए रख छोड़ा है। पहले उसने सारी बैटरियों को पानी में भिगो-भिगो कर देखा था, किसी में कोई जान नहीं। कल तक एक लैम्प की मुमूर्ष लौ इस अंधेरी बंद गुफा में जुगनू की तरह जल रही थी। आज वह जुगनू मर गया था। दिन काल का हिसाब बेकार था, अंधेरे में कुछ भी नहीं सूझता, अपने बजूद तक के प्रति भी कभी-कभी शंका पैदा हो जाती है। इस निराकार स्थिति में जाने कुछ पल गुज़र गये या कई युग, कुछ पता नहीं। सहसा उसे लगा, उसे कोई टटोल रहा है। भूतीला स्पर्श, "कौन ...। कौन है ...।" भौंक उठता है उधम।

"मैं, मैं सोमारू ... और तुम।" टटोलना अभी ज़ारी है। "मैं उधम" इसके साथ ही उधम ने भी टटोलना शुरू किया उसे, "मगर तुम सोमारू नहीं हो बोलो कौन हो "कौन हो तुम।" अस्फुट घरघराते हुए संवाद, जैसे हज़ारों वर्ष के खंडहर से दो प्रेत बोल रहे हों।

टटोलना अभी ज़ारी है, उभरी हुई हड्डियां कांटों-सी दाढ़ी और मूंछें ... कान और कपाल ...। जब श्रवणेन्द्रिय ने धोखा दिया तो स्पर्शेन्द्रियों क्या कर सकती हैं। जिन अंगों को वे पहचाने थे, वे मांसल अंग किसी और के थे, कंकाल किसी और के हैं।

"खैर, तुम कोई भी हो, कोई फ़र्क नहीं पड़ता।" उधम ने हार मानते हुए कहा।

'एक फ़र्क तो है बेटा, मैं तुम्हें ढूंढते हुए कितने मुर्दों को टटोल चुका, तुम अभी ज़िन्दा हो, लाश नहीं।"

"बस होने ही वाला हूं चाचा, बात क्या है ?"

बोलने वाला शांत हो गया। उसने कान खड़े करके आहटों की टोह ली, फिर कहा, "तुम जैसे चौंके, ... मैं भी चौंक उठा था, कोई आकर छूने लगा शरीर, फिर डांटते ही कुत्ते की तरह भागा डर लागल, कहीं जम को दूत तो नहीं। मगर ऊ मंगतु था, मंगतु।" कलीम बताया, "यहां नहीं आया था ?"

"ना"

"उससे सावधान रहना बेटा, वह पगला गया है, एक—एक खस्सी हो गया, खस्सी साला लौंडा। दूसरे पर अब टूट रहा है।" उधम के बदन में झुरझुरी आ गई, क्या पता अंधेरे में कहां क्या हो रहा है।

"खैर, चाचा, तुम सो जाओ मेरे पास।" जाने कितने पल गुज़र गए इस तरह।

अंधेरे मे सूंघते, आहटें लेते, टटोलते रेंग रहा है मंगतु, जैसे कोई अंधा मरियल भालू घने जंगल में रास्ता भटक गया है। वह लोगों को सूंघता है, टटोलता है और दुरदुराने पर आगे बढ़ जाता है। वह क्या करना चाहता है, ठीक-ठीक उसे नहीं मालूम। क्या एक भ्रष्ट की तरह सबको भ्रष्ट करने का प्रतिशोध भाव है या यह सब महज़ अधमुंदी आंखों का सपना है, और उसकी ज़रूरत कुछ और ही है। क्या है वह दूसरी ज़रूरत। भूख या यौन पिपासा। शायद दोनों ही उसे खुद पता नहीं, क्या-क्या करता रहा है वह अंधेरे में।

आज अंधेरे में टटोलते-टटोलते जा पहुंचता है एक लाश तक। कोई स्पंदन नहीं। गुदगुदाता है, कोई हलचल नहीं ... ना, कैसे नहीं है हलचल...। हंसते-हंसते बेहाल हुई जा रही है क्लारा। उसकी चोली मसक गयी, पेटीकोट खुल गया। अरे-रे उस पर गिरी जा रही है, वह तो। कोई देख लेगा तो...। उंह, देख लें। पूरी कालोनी देख रही है, देख ले।

क्लारा की बसाती देह की गंध उसके नथुनों में भरती जा रही है। दांत कस कर मिच गये हैं सपनीली क्लारा के खुश्क होठों पर। उबल कर फफोले की तरह फटता मंगतु।

शिथिल पड़ती स्नायविक उत्तेजना में उसके होंठ क्लारा के होठों का पूरा रस सोख कर विरत होने को हैं कि तभी एक दूसरे रस का अहसास होता है। होंठ फिर भिच जाते हैं होठों पर। दांतों से दांतों के टकराते ही अहसास होता है कि अब वहां... मांस नहीं है, पूरे के पूरे होंठ काट कर मुंह में ले चुका है वह।

"लेकिन यह तो...। पहला कौर अटकता है गले में। तब मरो। सुनो तुम्हारे साथी क्या कहते हैं तुम्हें—सिंह जी का लौंडा। लाख गंगा नहाओ अब तुम शुद्ध होने से तो रहे ...? मरोगे ... मुआवजा भी नहीं मिलेगा। न इस लोक के रहे न उस लोक के।" तर्क फिर से कुतरते हैं चेतना को।

"ना, अभी-अभी इस तरह के ग़लत सोच में आकर एक ग़लत काम कर बैठा।"

"और वे सब जब सांडों की तरह तुम्हारे पीछे दौड़ रहे थे उस समय..।"

"याद आया? तुमने तो बदला ले लिया, अब एक बदला और। जी कर दिखा दो।"

"ना ना ना, मुझे पागल न बनाओ।"

"मरोगे—ठीक है मरो।"

"ना।" इस बार इंजोरिया की डबडबायीं कजरारी आंखों ने टोका।

मंगतु इस बार कुछ ठोस तर्कों पर खड़ा होता है—"पाप क्या है? पुण्य क्या है? लोग थूकेंगे? थूके...। वैसे भी पूजा कौन करता है तुम्हारी? ये साले ढकोसलेबाज पटपटा कर मर जायेंगे।"

वह लगभग सन्निपात की स्थिति में जांघ का मांस मुंह से हबकता है। तीव्र बदबू और विरक्ति। "हाय। यह तूने क्या किया मंगतू ...?"

"अब तो जो कर लिया, एक बार किया तो भी और सौ बार किया तो भी। कपालिनी मैया भी तो खून पीती है। भगत को छिमा करो मैया... मैं तो जीने के लिए मुर्दा खा रहा हूं, लोग तो जिन्दा आदमी खा जाते हैं...?

वह यकायक भूल ही गया कि वह कहां है। ऐसा लगा जैसे अपने गांव में हैं।

सिंह जी के दरवज्जे बासी मांस खा रहा है, कई दिनों का बासी। उबकाई आ रही है फिर थकान और भूख है कि...

अंधेरे में चपड़-चपड़ आवाज़।

उधम का शक अब यकीन बन गया। बेतरह घबड़ा गया। तो क्या सबके सब उसे मारने का षड़यन्त्र कर रहे हैं। लड़खड़ा कर उसने आखिरी लैम्प टटोली और रिलाईटर से पुनः जला दिया। बाप रे...।

सियार की तरह झुका हुआ है मंगतु मुकीद की जांघ पर। नोच ही रहा था कि अचानक रोशनी होते ही अकबका जाता है—मुंह में मांस लिए हुए...।

भूख सही नहीं गयी...पन्द्रह दिन में कपड़ों, काठ और पानी के सिवा कुछ भी तो नहीं गया पेट में। सोमारू और सूफी कलीमुदीन इस खौफनाक दृश्य को देख कर थर्रा गये।

मंगतू जैसे नशे की हालत में उठता है, पानी की दीवार से हाथ मुंह धोता है। भीगे कुत्ते की तरह पूंछ डुलाता अपराधी की तरह खड़ा है। उससे कोई नहीं बोलता। सिर्फ हिकारत में थूकने की अवाजें आती हैं। हिचकिचाते हुए वह आगे बढ़ा तो 'ना' 'ना' ... करते-करते सोमारू और कलीम चीखकर बेहोश हो गए। होश में नहीं लाया जा सका उन्हें। खूनी अपराधी की तरह बैठा है मंगतु ... बिरादरी से बहिष्कृत। उठकर 'ओ-ओ' करते हुए उल्टी करता है, फिर पेट पकड़ कर बैठ जाता है।

थोड़ी देर बाद घृणा की जगंह एक अजीब सा द्वंद्व छिड़ गया है मन में। पाप-पुण्य के रिरियाते निषेधों को अनसुना कर कोई फुसला रहा है उसे। जसे कामात्त पुरुष किसी नई-नवेली लड़की को फुसला रहा हो। ईर्ष्या हो रही है मंगतु पर। उधम के दिल में होता है कि वह मंगतु से पूछे—कैसा लगा मांस, हीः मगर ...

एक क्षण घृणा, दूसरे क्षण लोभ दोनों के बीच नाच रही है चेतना। दूसरे दिन उधम ने प्यार से पुकारा, मंगतु ..।

सो गया है शायद। करीब से जाकर देखता है कोई जान नहीं। लैम्प जलाकर देखा, ऐ इसका तो सर फूट गया है। तो क्या आत्म हत्या कर ली इसने... ?

और यह मंगतू भी गया। भूख और अपराधबोध के पाटे में पिस गया बेचारा। वरना इतनी जल्दी तो नहीं ही...। माफिया सरदारों, यूनियन के भ्रष्ट

दलालों, नेताओं, तस्करों, डकैतों, बलात्कारियों, खूनियों, अफसरों, को अपराध-बोध नहीं कचोटता और वे निर्लज्ज भाव से सीना तान कर जीते हैं काश कभी एक बार मंगतु की तरह उन्हें कोई कचोट होती तो इस दुनिया का नक्शा ही कुछ और होता।

यह क्या पैंसिल कहां गई। सारी की सारी खा गया क्या वह। लाचारी में मंगतू के सर से चिपचिपाये खून में ऊंगली डूबो कर उसने नाम काटा मंगतू का।

मंगतू के ख्यालों से अपने ख्यालों में, अपने ख्यालों से सोमारू के ख्यालों में ख्याल-दर-ख्याल, एक दूजे में गुथे-भिदे वह जाने कब तक बुखार की खुमारी में पड़ा रहा। न सुबह है, न शाम है, न दोपहर। हर घड़ी काली रात। पंजे फैलाये, मौत बिल्ली की तरह बंद चूहेदानी में फंसी उसकी स्थिति को घूर रही है। काले-उजले बड़े-बड़े परिंदे जैसे पेंगुईन।

तेरहवीं जनवरी : हाथ घड़ी में तेरह तारीख अस्पष्ट नीलेपन में चमक रही है। वक्त आठ बजे का। सुबह है या शाम इसकी कोई चिन्ता नहीं। उन्नीसवें दिन के आठ बजे दीवार से सर टिका कर बैठ गया है। उधम सिंह। न तन की सुधि है, न मन की। चुक-चुक-चुक-चुक चल रही है हाथ की घड़ी। गिराती हुई कत्तर-कत्तर कर सैकेन्ड, मिनट, घंटे और तारीखें। आज उन्नीसवां दिन है। सर एक बोझ बन गया है सर पर, अपने ही बदन की बू सही नहीं जाती। छीं। क्या होगा जी कर।

इस शमशान भूमि में कैसे सोये पड़े हैं माईनर ... निश्चिन्तता की नींद। न बीवी की फटकार का डर, न बच्चों की दिक करती किल-किल ... न इस बात की चिन्ता की सूदखोर सारा पैसा छीन लेंगे, न इस बात की धुक-धुकी कि टाईम आफिस के बाबू लोगों के सामने ही हाज़िरी बनवाने के लिए भी भिखारियों की तरह गिड़गिड़ाना होगा। इस बात की भी चिन्ता नहीं कि दारूखाने का मालिक बेइज्जत करेगा, इस बात का भी गम नहीं कि यूनियन के चंदे के लिये उसे रगेदा जायेगा। सब की पहुंच से दूर हो गए हैं लोग।

टूटती-लड़खड़ाती सांस में टूटते-लड़खड़ाते खून से सने लाल अक्षर ...

'मैंने दुनियां का अन्त बहुत करीब से देखा है। अपनी अहंमन्यता या सनक में डूबे कुछ-एक पापी महज अपने सामान्य से स्वार्थ के लिए दुनियां को शमशान बना जायेंगे। फिर कोई मसीहा बचाने नहीं आयेगा। वक्त रहते इन भेड़ियों और कुत्तों को पहचान कर चुन-चुन कर सफाया कर दो। हमने इस सत्य को पहचाना, मगर तब तक देर... वक्त रहते तुम भी सावधान हो जाओ, डूब कर मरने वाले

माईनरों का आखिरी अनुभव है यहां कहीं तुम्हें भी देर न हो जाये । उसके बाद का कोई अक्षर साफ नहीं उतरा मां, बहन सलाम । मैनेजमैंट हत्यारा है । चोर, ठंसानी... कुछ इस तरह के टुकड़े बड़ी मुश्किल से जोड़े जा सकते थे ।

दोनों डायरियों को मुट्ठी में भर कर जब उसकी पलकें मुंद रही थीं एक ज़ोरदार बंप हुआ और सुरंग में पानी घुस गया मगर उर्ध्व तक न जाकर तनिक पीछे ही पूंछ फटकारता रहा और वहीं विष उगलता रह गया । जैसे इक्कीस दिन लंबी मौत पर मन्त्र पढ़ रहा हो ।

ओंम् मधुवाला वातायते, मधु क्षरति सिंधव, ... ज़िन्दगी और आदमी को उसने इतने, फेज़ेज़ इतने डाइमेशन्ज़ में देखा है कि उसके सामने परमुटेशन, कम्बिनेशन का गणित छोटा पड़ जाता है । मसीह नूह को प्रलय का पता पहले ही चल गया था, और उन्होंने सृष्टि का एक-एक नमूना नौका में भर लिया था । उधम को तो इतना भी समय नहीं मिला । काश ... मौत कुछ और दिन इन्तज़ार कर पाती ।

आज वह जा रहा है, पता नहीं बाकी दुनियां है भी या नहीं—यह जिज्ञासा भी उसके साथ चली जायेगी । क्या ऐसी ही त्रासदी रही होगी ग्रीस के पांपेई नगर की क्या इन अभागों का भी पता पांपेई की तरह उत्तखनन के बाद ही लग पायेगा कि 'ज्वालामुखी' के लावे ने पूरे नगर को उदरस्थ कर लिया । मगर पांपेई तो फिर भी खुशनसीब था, पूरी दुनियां एक साथ ही खत्म हो गई और चंदनपुर ...... ?

आधी दुनिया शेष है और आधी उसके वियोग में रिस-रिस कर मरने के लिए छोड़ दी गई है ।

अचानक जग पड़ा वह मूर्छा से । चारों ओर घना अन्धेरा । वह भूल गया एक बारगी कि वह कौन है, क्या है, जैसे युगों की लम्बी नींद से जागा हो । फफोलों सी फूटने लगी स्मृतियां ......

भाप भरे बादलों के पंख लगा कर उड़ा जा रहा है मानों स्मृतियों की धूप छांही एक दृश्य खोलते, एक दृश्य बन्द करते हुए । उमड़ती घटाओं से बचते हुए पीछे बहुत पीछे... । किसी बिके मवेशी की तरह रस्सी तुड़ा कर लौट आया है मन अपने पुराने ठांव । ... लाहौर की किसी गली के उड़े-उड़े धूसर रंगों के सपनीले आत्मीय प्रांतर में । नंगी ईंटों के मकान के दरवाज़े पर एक बाप दंगाइयों के प्रहार से कट रहा है ... एक मां अपनी कमर में गहने, पैसे बांधे दोनों हाथों से अपने बेटे-बेटी को लेकर पत्थर का कलेजा करके भाग रही है—पिछवाड़े से पड़ोसी

मुसलमान के दरवाज़े, दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े, फिर सड़कें। चूजे की तरह दोनों बच्चे बेहोश ! आंख जब-जब खुलती है, अजीब-अजीब-सी फुसफुसाहटों के बीच रेल की आवाज़ सुनाई पड़ती हैं छक-छक ... । पीं ... ।

शरणार्थी कैम्प के उधड़े रेशे ... दिल्ली, मथुरा, कानपुर, लखनऊ, धनबाद, कुछ साफ-साफ याद नहीं आता, सिर्फ एक आवाज ... मां की सुबकियां, बहन की बर्राहट और रेल की छक-छक-छक-छक पीं ऽऽऽ । पीं ऽऽऽ ।

गुरुद्वारा । ग्रन्थी साहब का चेहरा । मोटर रिपेयरिंग, कालिख, तेल, मोबिल से चौकट कपड़े ... और ज़रा-ज़रा-सी गाली-अबे स्साले, बैठ-बैठ कर रोटी तोड़ता ... घोष साहब का सर्वेन्ट क्वाटर उधम गाड़ी पोंछता है, उधम क्यारी मोड़ता है, और लो उधम स्कूल भी जाने लगा ।

'बन्दा कोबी' (पात गोभी) । घोष साहब की बेटी कमला की उकसाने वाली ठिठोली । आइने में गौर से देखता है उधम इस सर्वेन्ट को—साढ़े पांच फीट का नौजवान, नसें भीग रहीं हैं । ... और हाथ पकड़ लेता है कमला का । तड़ातड़ दो थप्पड़ घोष साहब के । उधम फिर से फुटपाथ पर ... अचानक एक गाड़ी का घिरना ... कौन ? क्या पता गुंडे हैं । घोष साहब को घेर लिया है उन्होंने, उधम अपने फुटपाथी कपड़ों की दुकान से सरिया खींच कर पिल पड़ता है । गुंडे भाग खड़े होते हैं ।

आश्चर्य से देखते हैं घोष साहब । कोई जबाब दिये बिना लौट आता है, उधम ।

शाम को घर लौटते ही मां का विलाप-"तू कहां मर गया था, मेरी जसवन्त को गुंडे दिन-दिहाड़े सड़क से उठा ले गये रे ।" पागलों की तरह दौड़ता-फिरता है उधम हर ओर । घोष साहब भी दौड़-धूप करके हार गये "ये-ई समझ लो मां तुम्हारा बेटी पाकिस्तान में-इ रह गया ।"

आंखों के आगे अंधकार है । इंटरनल हेमरेज की तरह तबाह करती रही जसवंत । हजारीबाग का ढाबा ...। बी. एस. सी. में दो बार फेल हो चुका उधम । अक्सर भूल जाता है, कौन सी जगह है; कितना समय है, क्या कर था वह ...।

'बंदा कोबी ।' फिर वही पुकार। इस बार कमला की मांग में सिन्दूर था। बाप के साथ आयी थी हजारीबाग । बहुत समझाया, "ये समझ लो तुमको अपना मां की खातिर ज़िन्दा रहना है, सिरिफ मां की खातिर । का तुम चाहता कि मां मर जाय ?"

"नहीं, नहीं ।"

"तो अइसा करो, चेन्ज करो अपना को   हां। और तुम चंदनपुर, चले जाओ-एप्रेंटिस में सैलेक्शन हो जायेगा। हम अतनू दा को बोल देता है।" घोष साहब ने कहा।

रोकती रह गई मां, "बेटा कोल फील्ड में मत जा।" मगर वह नहीं माना। इस बार उसे एक नये सिरे से ज़िन्दगी शुरू करनी है।...टोटली चेन्जड।

गोविन्दपुर मोड़ पर मुलाकात हुई आशीष से . फिर अतनू दा, नौकरी। चंदनपुर में उसने हर बार अपने अतीत को झुठलाया है, बहन तक की टीस को बाप तक की हूक को, सिर्फ मां को हर पखबारे खत लिखा करता है। मैं बिल्कुल ठीक हूं। हां इस बार ज़रूर लिखा था कि चली आओ चन्दनपुर। अब तुम्हें ढाबा चलाने की ज़रूरत नहीं। यहीं आकर देखी, मैंने बाप, माई बहन सब कुछ पा लिया है। शायद आ गई होगी मां। कलेजा रोज-रोज पकड़ता है। शेष प्रणाम लो मां... मैंने बहुत कोशिशें कीं। मगर लगता है, युग बीत गए हैं। अतनू दा जीवन की एक परिक्रमा की बात करते थे, मैंने शत्-शत् परिक्रमाएं कर लीं। वे चौरासी लाख योनियों की बात करते थे। मैंने चौरासी लाख योनियों का दर्द एक जीवन में ही जी लिया है।

और लौ इस अन्धेरे के समुद्र ने एक बार ऊपर उछाल कर फिर से खींचना शुरू कर दिया। नीचे एक हाथ में दोनों डायरियों को मुट्ठी में कसे वह डूबने से बचने के लिए आप्राण चेष्टा कर रहा है। मगर नहीं, डूबता-डूबता, डूबता ही जा रहा है।

एक-एक साथी को उसने छटा-पटा-छटपटा कर मरते देखा है। असह्य दबाव, जान लेवा उमस, भूख और ज्वर में सीझते हुए। खौफनाक पंजे फैलाए मौत ने इक्कीस कदम आगे बढ़ाए हैं, हर कदम पर उसने लड़ाई लड़ी है, हर कदम पर झपट्टे मारकर उस पंजे ने उसका कुछ न कुछ नोच लिया है। आखिरी सहारा आखिरी लैम्प की रोशनी का था, वह भी दो दिन पूर्व रीत चुकी। अब कितने पल ? और कितने पल ?

ठीक सर पर है चंदनपुर। बहुत ही धूसर-सा देश, जैसे सूर्य-ग्रहण के आकाश का डरावना सलोनापन, पक्षियों की अस्फुट-सी कांकली... स्याह तेजाब में धीरे-धीरे विलीन, विसर्जित होती चेतना .. । पीठ के बल टेक लगाए, कान दीवारों में सटाए किस चंदनपुर का संदेश पाने को बैठे हो उधम सिंह...... ? वह चंदनपुर तो ठीक तुम्हारे सर पर है, मगर शत्-शत् प्रकाश वर्षों की दूरी और हजार परतों के पार। ग्रहण-ग्रसित इस बेला में स्नायुतन्त्र क्या उस पहचान का एक रेशा भी पकड़ पायेंगे...... ?

⊙

कथा-समीक्षा एवं सम्पादन के अतिरिक्त बलराम के अब तक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। अपनी रचनाओं में ग्रामीण जीवन को तरजीह देने वाले कथाकार का प्रकाशनाधीन पहला उपन्यास 'कारावास' आजादी के बाद ग्रामीण स्तर पर हुए तमाम बदलावों के साथ मूलभूत विसंगतियों को व्यापक स्तर पर उद्घाटित करता है। यहां प्रस्तुत है इस उपन्यास का एक अंश।

आधा घर

☐ बलराम

चौपाल में चारपाई पर लेटा है सत्य प्रकाश, आंखें मूंदे, कुछ सोचता हुआ। पास ही बैठी है अम्मा। खेतों से लौटने पर कुम्हारिन काकी को मारमीट की भनक लगी तो भागी चली आयीं और अम्मा से पूरी बात सुनकर सत्यप्रकाश के प्रति ममतालु हो उठीं। ये दो बूढ़ियां एक दूसरे के पास हों तो फिर बातों के न जाने कितने संदर्भ कहां-कहां से आकर जुड़ते जाते हैं।

नाना का घर-बार सत्ती को मिल जाता तो बेचारे को आज यह दिन क्यों देखना पड़ता, लेकिन नहीं हुआ कुछ। होता कैसे, जब विधना को मंजूर यही था कि सत्ती जीवनभर दर-दर की ठोकरें खाता फिरे। लेकिन दोष शायद विधना का उतना नहीं है, जितना सत्ती के बप्पा का। वे ही टाल-मटोल करते रहे, नहीं तो कब की हो चुकी होती लिखा-पढ़ी, पर नहीं, सत्ती के बप्पा टालते रहे और सोचते रहे कि कभी भी करवा लेंगे, ऐसी जल्दी क्या है। सत्ती के नाना कह-कह के हार गये कि किसी दिन कचहरी चलकर लिखा पढ़ी करवा लो, बहत्तर बरस के इस जर्जर शरीर का क्या भरोसा कि दम निकल जाए। बुढ़ऊ की बात तब तो सुनी नहीं, लेकिन अब पछता रहे हैं सत्ती के बप्पा, और धुन रहे हैं अपनी खोपड़ी। लेकिन अब पछताये होत का, जब चिड़ियां चुग गयीं खेत।

सिपाहिन ने एक-एक कर सब कुछ हड़प लिया ... बाग-बगीचा, खेत-खलिहान, घर-दुआर और फिर सारी की सारी संपत्ति जैसे, कि डलहौजी एक-एक कर हिन्दुस्तान की सारी रियासतें हड़प कर गया था। और आज बड़कऊ भी डलहौजी से कम नहीं लगे, जो अपने छोटे भाई के हिस्से का आधा घर हड़प जाना चाहते हैं। डलहौजी की नीति अम्मा को सत्यप्रकाश ने ही एक दिन बतायी थी और आज वही बात वे कुम्हारिन काकी को समझा रही हैं, "घर-घर मा अब पैदा होइगे हैं डलहौजी। कहैं का न चही, मुलौं आज बड़कऊ बेकुफिहीं तौ करि गे हैं बर-बरोबर भाई पर हाथ फेंकिगे। अरे, डांटि-फटकारी देतेव, मान लेव बड़कऊ पर सत्तेवा उल्टै हाथ चला देत तौ का होत ? अरे वो कहत हैं कि भाई बरोबर वैरी नहीं, भाई बरोबर मीत। बड़कउ इया दुश्मनिही तौ करि रहे हैं कि सत्ती का घरू न आहैं। अरे भाई घरू काहे न आहैं ? खुदा न खास्ता, वोखा गांवैं मा केचुआ ख्वादैं का परे, तौ का घूरे मा रही जाय।"

अम्मा और कुम्हारिन काकी के बीच चल रही यह बातचीत सुनकर सत्य प्रकाश को लगा कि कोई और उसके साथ हो, न हो, पर अम्मा उसके साथ ज़रूर है। क्या पता, शाम को सभापति काका से सलाह-मशविरे के बाद बप्पा भी उसके साथ हो जायें। शायद दोनों भाई भी उसका ही साथ दें पर उस पर लगा बड़की भाभी की हत्या का यह आरोप ? क्या होगा इस आरोप का ? कैसे मुक्त हो पायेगा सत्यप्रकाश इस आरोप से ? किसी न्यायालय में यह आरोप लगा होता तो उसे गलत साबित करना उसके लिए मुश्किल नहीं था, पर यह आरोप एक ऐसी अदालत में लगाया गया है, जहां न कोई तर्क काम करता है, न ही कोई साक्ष्य। तो क्या ऐसी स्थिति में उसे गांव छोड़कर चले जाना चाहिए ? नहीं, चले जाने से तो आरोपों की पुष्टि ही हो जाएगी। वैसे तो वह शायद नहीं रुकता, लेकिन अब उसे कुछ दिन तक यहीं गांव में रुकना होगा, श्यामगंज में, देखना-भोगना होगा वह सब कुछ, जो-जो उसके सामने आयेगा।

नाना का प्रसंग छिड़ा तो सत्यप्रकाश की चेतना स्मृतिओं की गहराई में उतर गयी, गहरे और गहरे। उस गहन अन्धेरे के बीच दृश्यमान हुआ एक वृद्ध। खिचड़ी बालों और झुर्रियाये चेहरे वाला वह वृद्ध सामने खड़ा उसे निहार रहा था। बूढ़े की आंखें देखकर सत्ती को लगा कि वहां नेह का

समंदर अकुला रहा है, जैसे किसी नवजात शिशु के लिए उसकी मां की छातियों का दूध। मुस्कराते हुए वह बूढ़ा आहिस्ता-आहिस्ता उसके करीब आ गया और बोला, "का हालचाल है बबुआ ?"

और लो, यह सत्ती को क्या हो गया, वह बूढ़े की गोद में चला गया और बूढ़ा उसे चूमने लगा, बेतरह। पांच साल का हो गया सत्ती। कितना अच्छा लग रहा है वह पांच साल की इस उमर में। लंकलाट का पाजामा और छींटदार बुशर्ट पहनकर कपड़े के नीले जूते और मोजे डांटे एकदम गुड्डा-सा। वृद्ध कहीं बाहर जा रहा है और सत्ती साहब ने ज़िद पकड़ ली है, "नाना, हम आपके साथ चलेंगे।"

"कहां बबुआ ?"

"जहां आप जा रहे हैं।"

"हम तो कहीं नहीं जा रहे हैं बबुआ।"

"आप झूठ बोलते हैं नाना।"

"सच्ची बबुआ, हम कहीं नहीं जा रहे।"

"तो फिर हमें लेकर चलिए।"

"कहां ?"

"बगिया में।"

"बगिया में, लेकिन हम तो खेतों पर जा रहे हैं, भैंस का चारा लेन।"

"फिर झूठ, चारा तो मशीन पर पड़ा है।"

"कल और परसों के लिए भी आज ही लाना है,"

"क्यों ?"

"श्यामगंज जाना है न,"

"वहां क्यों जाना है ?"

"बिट्टी है न।"

"हम बिट्टी के पास नहीं जाएंगे।"

"क्यों भला ?"

"बिट्टी हमें प्यार नहीं करती।"

"नाहीं बबुआ, बिट्टी तुम्हें बहुत प्यार करती है।"

"तो फिर मेरे पास रहती क्यों नहीं ?"

"यहां रहे तो तुम्हारे बप्पा को रोटी बनाकर कौन देगा ?"

"अच्छा ठीक है, आप कहते हैं तो हम बिट्टी के पास चलेंगे, लेकिन पहले हमें बगिया ले चलो।"

"चारा के लिए देर हो जाएगी बबुआ।"

"हो जाने दो।"

"फिर बिट्टी के पास कैसे चल पायेंगे ?"

"तो नहीं चलेंगे।"

"नहीं बबुआ, श्यामगंज तो चलना पड़ेगा और तुम्हारे बप्पा को लेकर कचहरी आना पड़ेगा।"

"कचहरी में क्या होगा ?"

"तुम्हें गोद लूंगा।"

"मैं तो आपकी गोद में ही हूं।"

"कानूनी तौर पर तो नहीं हो।"

"तो क्या कोई मुझे आपकी गोद से उतार देगा।"

"नहीं, लेकिन ज़मीन जायदाद तुम्हें नहीं मिलेगी।"

"मुझे चाहिए भी नहीं ज़मीन जायदाद, क्या करुंगा उसका, मुझे तो सिर्फ बगिया चाहिए।"

"सिर्फ बगिया ही क्यों ?"

"उससे आम मिलेंगे, अमरूद मिलेंगे, बेर मिलेंगे और क्या?"

"तभी तो श्यामगंज चलना है, अगर मैं बिना लिखा-पढ़ी के मर-मरा गया तो फिर तुम्हें बगिया भी नहीं मिलेगी।"

"लेकिन आप मरेंगे क्यों ?"

"एक न एक दिन मरना तो पड़ेगा ही बबुआ।"

"नहीं नाना, मैं आपको मरने नहीं दूंगा।"

"अच्छी बात है, अब नानी के पास जाओ। मैं खेत से चरी काट लाऊं।" कहकर नाना हाथ में हंसिया लेकर चलने लगे, लेकिन सत्ती साहब मचले हुए थे बगिया चलने के लिए, कैसे मान जाते, बोले, "कहीं भी जाओ, पर पहले मुझे बगिया ले चलो।"

और लो, नाना ने हथियार डाल दिये। सत्ती को पीठ पर लादा और बगिया की ओर चल दिये। थोड़ी ही देर में बगिया आ गयी। सीं ऽऽऽऽ करता हुआ एक जहाज़ चकेरी हवाई अड्डे पर उतर गया।

नाना सत्ती की अम्मा के बाप नहीं, मामा हैं। जब अम्मा दस बरस की रही होगी, उनके मां-बाप गुजर गए थे। नाना ने ही पाल-पोस कर बड़ा किया था अपनी भानजी और उससे छोटे भांजे सुदामा को। तब नाना की माली हालत बहुत अच्छी नहीं थी। माधो परिवार में एक जवान बहू की मौत हुई तो किसी तरह नाना ने जुगाड़ भिड़ाई और अपनी भानजी के हाथ पीले कर दिये। भांजा तो शुरू से ही आवारा रहा है। उसका कुछ पता नहीं चलता कि कब कहां होता है और कहां चला जाता है। नाना के पास रहता तो चैन की बंसी बजाता, पर नहीं, घर से एक दिन चुपचाप निकल गया और आज तक लौट कर नहीं आया। हां, अभी तक ज़िंदा है, ऐसे समाचार गाहे-बगाहे नाना तक पहुंच जाते हैं और नाना इतने में ही संतोष कर लेते हैं कि चलो, कहीं भी है, ज़िंदा तो है। किसी ने उसे हरिद्वार में देखा, किसी ने प्रयाग में और किसी को काशी में मिला तो किसी को मथुरा में। किसी ने धोखे से पकड़ भी लिया और वापस लौट चलने के लिए समझाया तो जल्दी ही आने का वादा कर खिसक गया, पर बंदे को नहीं आना था तो नहीं आया।

कुछ लोग कहते हैं कि गांव की एक कहारिन के चक्कर में फंस गया था। जो कहार को अकेला छोड़कर उसे भगा ले गयी। लेकिन कुछ लोग इसे सिपाही की साजिस कहते हैं, उनका कहना है कि सिपाही ने पहले तो कहारिन के साथ उसे भगाया और फिर दोनों को पुलिस से पकड़वा दिया। छुड़वा कर कहारिन को तो किसी के हाथ बेच दिया और भांजे की इतनी मरमम्त करवायी कि वह चलने तक के काबिल न रहा और फिर सिपाही ने यह कर उसे छुड़वा लिया कि अभी तो मैं किसी तरह तुम्हें छुड़वाये ले रहा हूं, लेकिन अब ज़िंदगी में कभी भी रामनगर वापस मत आना और न ही किसी से कुछ बताना, नहीं तो कहार तुम्हें ढूंढकर गोली से उड़वा देगा। नाना का वह भांजा मंदबुद्धि तो था ही, डरपोक भी कम नहीं था और सिपाही की इन बातों से इतना डर गया कि फिर कभी गांव की तरफ रुख ही नहीं किया।

वह नाना के पास रहता या कहारिन के साथ मोज-मस्ती करके लौट जाता तो कुछ दिन बाद नाना धूमधाम से उसकी शादी कर देते। नानी बहू का सुख भोगती और नाना मगन हो जाते बाल-बच्चों की किलकारियों में, पर विधना को शायद नाना-नानी का सुख मंजूर नहीं था। मंजूर होता तो क्या वे निसंतान रह जाते या अनाथ भांजा-भांजी पाकर भी यों अकेले रह जाते। पर भांजा ही कायर निकल गया तो विधना को क्या दोष देना। तो फिर क्या

विधना को यह मंजूर था कि नाना का उत्तराधिकारी सत्ती बने। सत्ती क्या इसलिए नाना की आंखों का तारा था, सत्ती ने सोचा और फिर उसे याद आने लगे वे दिन, वे मंजर, भोले और भले।

नाना के साथ बगिया जाने के लिए सत्ती अक्सर मचल जाते थे। जानते थे कि नाना टाल नहीं सकते। कभी खेतों पर पहुंच गए तो नाना ने झरबेरी में अटका दिया। कभी कोई बरफवाला आ गया तो उसी में विलम जाते थे सत्ती। लेकिन कभी-कभी मुश्किल हो जाती थी। एक बार का किस्सा है कि सत्ती नाना के साथ बगिया पहुंचे, जहां ढेर के ढेर अमरूद जमा थे। लेकिन सत्ती साहब आम की फरमाइश कर बैठे। पहले तो नाना ने बेर देकर फुसलाना चाहा पर सत्ती साहब का मुंह फुसलने के लिए तो फूलता नहीं था। नाना ने चिरौरी-सी करते हुए पूछा, 'तो फिरि का ल्याहव बबुआ?'

'टपके!' साहब ने फरमाया तो नाना हैरान-परेशान हो उठे और लगे सोचने कि यह कैसी बेमौसम बरसात है। अमरूद और बेर के मौसम में आम की फरमाइश, वह भी देशी टपके की। बिलायती या दशहरी आम तो फिर भी शायद चकेरी में मिल जायें, लेकिन यह टपका कहां से लायेंगे वे, नाना सोच में पड़ गये। सत्ती साहब आसानी से तो मानने से रहे, आसानी से मान जायें तो फिर सत्ती ही काहे के। दुलराते नाना ने कहा, "आजु-कालि टपका थोड़ो होत हैं बबुआ।"

"आप फिर झूठ बोल रहे हैं नाना।"

"सच्ची बबुआ, आजु-कालि टपका कहां होत हैं?"

"होत होंय चहै नै होत होंय, हमें तो बस टपका चाहिए।" कहकर सत्ती साहब पैर पटकने लगे। हार कर नाना बोले, "चलो, साइति चकेरीमा मिली जांय।"

चकेरी का नाम सुनते ही सत्ती साहब खुश हो उठे। बगिया से वापस लौट रहे थे कि छक्-छक् छक्-छक् छक्-छक् छक्-छक् करती शटल गुज़र गयी। शटल देखकर सत्ती साहब गाड़ी में चढ़ने की ज़िद करने लगे तो नाना ने कहा, "चलौ चकेरी मा बैठि लेहेव।"

नाना की पीठ पर सवार सत्ती घर के चबूतरे पर उतरे तो नानी बरहंचा से दुआर बुहार रही थी। नाना ने साइकिल उठायी और नानी ने कहा, "बबुआ का लैके जरा चकेरी लग जात हन। घंटा भरे मा लौटि अइबे।"

साइकिल के डंडे पर सत्ती के बैठने लायक छोटी गद्दी नाना ने शायद लगवाई ही इसलिए थी कि क्या पता, कब सत्ती का मिजाज बिगड़ जाये। थोड़ी देर में वे लोग गांव की हद से बाहर निकल आये और फिर चकेरी आ गया, चकेरी स्टेशन। नाना ने टपके की खोज शुरू की तो सत्ती साहब रेलगाड़ी में बैठने की बात भूल गये या शायद उस समय स्टेशन पर कोई गाड़ी न होने के कारण उन्हें गाड़ी की सवारी का ख्याल ही नहीं आया। नाना ने सारी दुकानें छान मारी। पर टपके तो दूर, कहीं दशहरी या बिलायती आम तक के दर्शन नहीं हुए। सत्ती साहब को बड़ी मुश्किल से विश्वास हुआ कि वाकई यह टपकों का मौसम नहीं है। मन मार कर उन्होंने बरफी की तरफ इशारा किया तो नाना ने बड़ा डिब्बा भरवा लिया, और फिर वे लोग गांव के लिए लौट पड़े। रास्ते भर सत्ती बरफी खाते रहे और घर आकर नानी को डिब्बा देते हुए बोले, 'किवड़ियों में रख दो। फिर खाऊंगा।'' शाम को सोते समय बरफी के कुछ और टुकड़े खा गये सत्ती साहब, लेकिन रात में सो नहीं पाये, पेट गड़गड़ करता रहा। बारह बजे के करीब उठे और घुटना पकड़ कर बरोठे की तरफ भागे। बखरी भी नहीं पार कर पाये थे कि पड़-पड़-पड़-पड़ कर पोंक मारा। घुटना और टांगे टट्टी से सन गयीं। रात में तीन-चार बार और उठकर बखरी में ही बैठकर पोंके थे सत्ती महाराज। बाद में भी दो तीन दिन तक पोंक ढीली रही उनकी, लेकिन नानी ने एक बार भी उनसे कुछ नहीं कहा, उल्टे नाना को ही कोसती रहीं कि सत्ती की परवाह नहीं करते। रात में तो चूरन फंकाया था नानी ने, लेकिन सवेरा होते ही हकीम जी से न जाने कौन-सी गोलियां ले आयीं, जिनसे सत्ती महाराज दो-तीन दिन में चंगे हो गये थे।

नाना को अपने भांजे सुदामा की याद अक्सर आती, लेकिन वे कर भी क्या सकते थे। भांजे का नाम ही सुदामा नहीं था वह जीवन में भी सुदामा ही था—धोती फटी-सी लटी-दुपटी, अरु पायं उपानह की नहिं सामा। जिसे भी कहीं मिला इसी रूप में मिला। अगर वह सुदामा न होता तो क्या नाना के इस राज-पाठ के बावजूद दर-दर की ठोकरें खाता फिरता। बिना किसी गवाही के नाना सिपाही और सिपाहिन से कहते भी तो क्या? वैसे ही उन लोगों से उनकी कोई बोलचाल नहीं है। सुदामा के भाग जाने को लेकर सिपाही और सिपाहिन से कहते भी तो क्या? सुदामा के भाग जाने में सिपाही और सिपाहिन का हाथ हो सकता है, नाना इस संभावना से इन्कार नहीं करते, क्योंकि जानते हैं कि जीते जी अगर वे अपना कोई उत्तराधिकारी न बना पाये तो उनकी सारी

संपत्ति सिपाही और सिपाहिन के बेटे को ही मिलेगी, और इसे सम्भव बनाने के लिए यदि सिपाही ने सुदामा को भगाने की, डराने-धमकाने की कोई साजिश की हो तो असंभव नहीं, इसीलिए मरने से पहले नाना सब कुछ सत्ती यानी सत्यप्रकाश, उनकी बिट्टी का सबसे छोटा और चौथा बेटा जो नाना के ही संबोधन से अपनी मां को बिट्टी कहता है।

संझले भैया के बाद दो बहनें पैदा हुई और फिर सत्ती, नाना ने तभी सत्ती को गोद लेने की अपनी मन्शा ज़ाहिर कर दी थी। तीन बरस का होते न होते सत्ती से मां की गोद छूट गयी, लेकिन बदले में मिली नानी की गोद मां की गोद से किसी भी रूप में कम नहीं थी, बल्कि उससे कहीं अधिक स्नेहिल और लाड़-प्यारमय थी नानी की गोद, क्यों कि श्यामगंज में मां की जान को खाने वाले तेरह लोग थे और यहां नाना-नानी के बीच वह अकेला था, लेकिन उसका वह अकेलापन कितना-कितना सुखद था। प्यार और दुलार की हवाओं से महमहाता हुआ। अकेलापन भी सुखद हो सकता है, दुखद अकेलेपन में डूबकर सत्यप्रकाश इस सत्य को देख पा रहा है, लेकिन आज का यह अकेलापन! उफ, सत्य प्रकाश ने लम्बी सांस छोड़ी। कभी-कभी सुखद स्मृतियां भी कितना गहरा दंश दे जाती हैं।

आज की दुनिया में नाना-नानी के वैसे स्नेह की फेनिल बौछारों से बच्चों को भिगो सकने वाले लोगों की संख्या दिनोंदिन कम होती जा रही है। इतनी कम कि हैवानियत की विषैली हवायें मनुष्यता के बचपन को बहकाकर कहीं ऐसी दिशा में ले जा रही है, जहां उसके समुचित विकास की संभावनाएं बहुत कम हैं। कभी-कभी सत्य प्रकाश सोचता है तो कांप जाता है। आने वाली पीढ़ियों को अगर कोई कभी बतायेगा तो वे शायद ही विश्वास कर पायें कि नाना-नानी का वह स्नेह पगा पालन-पोषण इतना उर्वर था कि छह बरस का सत्ती देखने सुनने में आठ बरस का लगता था—चतुर, चालाक और निडर। बातचीत प्रायः खड़ी बोली में करता। नाना भले ही गांव की बोली बोल जायें, पर क्या मजाल कि सत्ती चाहे और उसकी जबान एक बार भी फिसले, हालांकि यह सब नाना के पढ़ाने-लिखाने से ही हुआ था। पर गांव के उस महौल में सत्ती अजूबा था, प्यारा अजूबा, पास-पड़ोस के लोग उससे खड़ी बोली में बात कर-करके मज़े लेते थे। स्वास्थ्य भी उसका अच्छा था, इतना अच्छा कि समवयस्क दो लड़के उसके दो-चार झपाटों में ही मैदान छोड़कर भाग खड़े होते थे।

ऐसे माहौल में पल-बढ़ रहा सत्य प्रकाश छह बरस से कुछ ही ऊपर का हुआ होगा कि एक दिन नानी चल बसी दिन भर तो उन्होंने घर के सारे काम-काज किये और शाम का खाना बना कर उन लोगों को खिलाया और खुद भी खाया। और दिनों की तरह उस दिन भी नानी उसे लेकर सोयी थी। मगर और दिनों की तरह सुबह उठकर उन्होंने उसे जगाया नहीं, न ही उसको खाने के लिए रोटी दी। जैसे शाम को सोयी थी, वैसे ही सोयी रही। तब उसने नाना से कहा था, "नानी को जगाओ, मुझे भूख लगी है, रोटी दे।"

सुबह उठते हो सत्ती नेनू चुपड़ी रोटी मांगता था और ऐसा कभी नहीं होता था कि उसे नेनू चुपड़ी रोटी न मिले। नानी की वास्तविक स्थिति जान कर सत्ती को कहीं सदमा न लग जाये, यह सोच कर नाना ने बुद्धू मामा के साथ उसी सुबह उसे श्यामगंज भेज दिया था, जो नानी की गमी का समाचार देने के लिए वहां गये थे। नाना ने बिट्टी को कहला भेजा था कि अब सत्ती और घर को वे अकेले संभाल नहीं पायेंगे, इसलिए सत्ती को वहीं अकेले छोड़कर वे अकेली ही आयें। तब श्यामगंज में दादी ने उसे सम्भाल लिया था। कभी-कभी उसे नानी की याद आती तो वह रोता। तब दादी भीखू की दूकान से उसे कंपट या सेब दिला लातीं और सत्ती रोना भूल जाते।

नानी के गुज़र जाने के बाद नाना एकदम से अकेले पड़ गये और नानी का क्रिया-कर्म सम्पन्न कर बिट्टी के साथ श्यामगंज चले आये। साथ में ले आये थे अपनी मुरैना भैंस, जिसे प्यार में भूरी कहा करते थे। बगिया वैसे भी फसल तैयार होनें पर ठेकेदार को उठा दी जाती थी, बैल न होने के कारण इस साल भी उन्होंनें खेत कटाई पर उठा दिये थे। दो महीने तक आराम स श्यामगंज में रहे, लेकिन एक दिन अचानक उन्हें न जाने क्या सूझा कि वे सत्ती के बप्पा पर बिगड़ गये, 'मेरी तो कोई सुनता ही नहीं है। कित्ती बार कहा कि कचहरी वाला काम करवा लो। पता नहीं, किस दिन मेरी आंखें भिच जायें, पर नहीं, सब अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं।

"चिंता न करौ मामा, अबे तौ तुम बहुत दिन लग जीहौ।" हंसते हुए बप्पा ने कहा तो बहुत संजीदा होते हुए वे बोले थे, "नहीं, मेरा अंतकाल अब बहुत दूर नहीं है लाला।" कह कर नाना ऊपर को देखने लगे थे मानों ऊपर जाने के अपने रास्ते की नरफ इशारा कर रहे हों। उनका गला भर आया था। तब सत्ती के बप्पा को पहली बार लगा था कि उनकी टालमटोल ने उन्हें

कहीं भीतर तक आहत किया है। तब उन्हें सांत्वना देने की गरज से बप्पा ने कहा, "चिंता न करो, अगले महीना सभापति का लै कै कचेहरी चलिबे और जौन कइहौ, लिखा-पढ़ी करवा लेबे।"

नाना ने सुना, पर ऐसा तो वे पहले भी कई बार सुन चुके थे। आज कहा तो वे उम्मीद लगाये बैठे थे कि मामले को एक-दो दिन में निबटाने की बात सुनेंगे, पर आज भी वही पुराना उत्तर सुनकर नाना बुझ-से गये। दरअस्ल नानी की मौत ने उन्हें एकदम तोड़ दिया था। निसंतान रहकर पूरा जीवन उन्होंने नानी के सहारे ही तो गुज़ारा था। वे नानी पर इतने निर्भर थे कि उनके बिना रह सकने की कल्पना तक नहीं कर पाते थे।

श्यामगंज में यद्यपि बिट्टी उनका पूरा ख्याल रखती, पर बिट्टी की जान को खानेवाला पूरा एक कुनबा था। हो सकता है, उस स्थिति में नाना ने खुद को उपेक्षित महसूस किया हो। एक दिन अचानक पता नहीं उन्हें क्या सूझा कि अपने गांव रामनगर जाने को तैयार हो गये। बप्पा ने और बिट्टी ने बहुत रोका, पर वे नहीं माने। बगिया और खेतों का वास्ता देकर तैयार हो गये और फिर चल दिये। चलने से पहले सत्ती को खूब-खूब चूमा और फिर रोने लगे। चलते हुए एक-एक रुपया मंझले और संझले को दिया और फिर सत्ती के हाथ में भी चांदी का एक रुपया रख दिया, लेकिन सत्ती नाना के साथ जाने के लिए मचल गये। तब नाना को स्टेशन तक पहुंचाने जा रहे बप्पा ने उसे अपनी गोद में ले लिया। स्टेशन आने से पहले ही नाना चुपचाप बैलगाड़ी से उतर गये और सत्ती के बप्पा को इशारा कर गये कि गाड़ी घुमाकर वापस ले जाओ। उन्हें डर था कि रेलगाड़ी में चढ़ते समय सत्ती ने उन्हें देख लिया तो बहुत रोयेगा। उसके बाद फिर कभी नाना से सत्ती की मुलाकात नहीं हो सकी। नाना के लिए अर्से तक हुड़कता रहा था सत्ती, खासकर तब, जब कोई उसे डांटता या मारता तो वह 'हाय नाना' करके रोता। तब दादी उसे अपनी गोद में छिपा लेती।

रामनगर, नाना का गांव, नाना के इस गांव की भूमि सत्ती की जन्मभूमि है। इसी गांव में पैदा हुआ था वह। यहीं पर गड़ी है उसकी नाल। शायद इसीलिए वह रामनगर जाने के लिए कुछ अधिक ही हुलसता रहा है। लेकिन नानी की मौत के बाद रामनगर उससे कुछ इस तरह छूटा कि आज तक वह रामनगर के दर्शन नहीं कर सका। जन्मभूमि होने के कारण ही शायद उसे

लगता रहा है कि दुनियां में कहीं और उसका घर होता, न होता, लेकिन रामनगर के उस घर को उसका घर ज़रूर होना चाहिए था, जिसकी दो बीता भूमि को उसके शरीर का पहला स्पर्श मिला, उसके पहले प्यार की तरह। लेकिन न उसे वह मिला और न ही वह लड़की, जिससे उसका पहला प्यार हुआ था। नाना का वह घर तीन बरस से लेकर छह बरस तक की उम्र की उसकी क्रीड़ाओं का साक्षी रहा है, लेकिन विधना को शायद यह भी मंजूर नहीं था कि वह अपनी जन्मभूमि पर अपने पांव जमा सके, अन्यथा बप्पा इस तरह से कचहरी जाने से क्यों कतराते रहते, हो सकता है कि बप्पा के मन में कोई भय रहा हो, जिसके कारण वे कचहरी जाने में टालमटोल करते रहे और उसी कारण से सत्ती अपनी जन्मभूमि से उखड़ गया।

उखड़ गया! अरे, सत्ती वहां जम ही कहां पाया। वहां तो सिर्फ उगा था वह। उसे तो अपने उगने की सही तिथि भी नहीं मालूम किसी को अगर मालूम रही हो तो वे सिर्फ सिर्फ नाना थे। उन्होंने अगर सत्ती की जन्मपत्री बनवायी भी होगी तो उसे नाना की मौत के बाद सिपाहिन ने चुल्हे के हवाले कर दिया होगा। सत्ती को अच्छी तरह से याद है कि नाना का बड़ा-सा बक्सा था, काठ का बना हुआ, जिसमें न जाने कितने कागज़-पत्तर भरे रहते थे। सिंचाई के, लगान के, और न जाने किस-किस काम के। एक पोटली में बंधे सोने-चांदी के कुछ जेवर भी थे उस बक्से में। कहते हैं कि नानी की मिट्टी को गंगा घाट पर फूंक कर लौटे नाना को बक्से का ताला टूटा हुआ मिला था, उसमें रखे जेवर-गहने तब गायब थे। लेकिन नाना चुप लगा कर रह गये। बाद में उस बक्से की कोई सार-संभार उन्होंने नहीं की, हो सकता है, उसी बक्से में सत्ती की जन्मपत्री रही हो। अम्मा या बप्पा में से किसी को उसकी जन्मतिथि याद नहीं है। वे लिखे-पढ़े होते तो भले ही किसी कापी-कागज़ में नोट कर लेते, लेकिन उनकी निरक्षरता ने सत्ती की जन्मतिथि को भूतकाल के अंधकार में विलीन कर दिया है।

एक बार सत्ती ने अम्मा को बहुत कुरेदा तो वे सिर्फ इतना बता पायीं कि पंडित जवाहर लाल नेहरू के गद्दी पर बैठने के चार-पांच साल बाद वह पैदा हुआ। दिन या महीना कुछ भी उन्हें याद नहीं रहा था। बुद्धू मामा ने ज़रुर एक बार चर्चा छिड़ने पर बताया था कि उस दिन महात्मा गांधी की पुण्य तिथि थी और उनके स्कूल में शोक मनाया गया था।

श्यामगंज से लौटकर नाना रामनगर पहुंचे तो पाया कि पाले ने अरहर के खेत चर लिए हैं और किसानों में हाय-तौबा मची हुई है। गेहूँ की फसल को

भी काफी नुकसान पहुंचा था। पता नहीं, फसल की बरबादी का सदमा था या नानी का वियोग अथवा सत्ती के नाम ज़मीन-जायदाद न लिखवा पाने का क्षोभ याकि उम्र का दबाब, रामनगर पहुंचते ही नाना बीमार पड़ गये। उनकी बीमारी की खबर समय से श्यामगंज नहीं पहुंच पायी। बुद्धू मामा कुछ दिन के लिए कहीं बाहर गये हुए थे, सो बीमार नाना की दवा-दारू और देखा-भाली सिपाही और सिपाहिन को करनी पड़ी। नाना ने उनसे कहा था कि हमें श्यामगंज पहुंचा दो। सिपाही ने उनकी बात टाली नहीं और अगली सुबह बैलगाड़ी मचिया दी। उस पर नाना को लादा और श्यामगंज के लिए चल दिए।

सिपाही गाड़ी हांक रहे थे। सिपाहिन गाड़ी में नाना को संभालने के लिए साथ बैठी थी। गांव की हद भी नहीं पार कर पाये थे कि नाना का बोलना बंद हो गया, अब क्या करते सिपाही ? गाड़ी वापिस रामनगर लौटा लाये और नाना की अर्थी सजा दी गयी, गांव के अनेक लोग जुड़ गए थे और फिर नाना की आखिरी यात्रा पूरी हो गयी। कई दिन बाद कोना फटा पोस्टकार्ड श्यामगंज आया था, बप्पा के नाम। नाना की मौत की खबर सुनकर अम्मा दहाड़कर रोयी और शाम तक रह-रह कर रोती रही। मां-बाप के नाम पर जो कुछ उन्होंने पाया था, उस दिन के बाद वह सबका सब खो गया और वे एकदम से अकेली हो गई थीं, निचाट अकेली।

दो महीने बाद रामनगर से पारबती मौसी आयीं और अम्मा को बताया कि तुम्हारे मामा अपनी मौत थोड़े ही मरे, बेहोशी की हालत में सिपाहिन ने उनकी घींच दाब दी और चार-छह लोगों को साथ ले जाकर सिपाही ने गंगा घाट पर उन्हें फूंक दिया। अर्थी सजाने से पहले कई कोरे कागज़ों पर अंगूठे के निशान लगवा लिए ताकि उनका सबकुछ हड़पने में कोई कानूनी अड़चन न आये। अब क्या है, अंगूठा लगे कोरे कागज़ों पर कुछ भी लिखवाया जा सकता है। बप्पा ने ये सारी बातें सुनीं और लम्बी सांस छोड़ते हुए कहा, "चलो हमार सत्ती बीच गा, नाहीं तो कैनेव दिन सिपाहिन वोखा कुआं-खंधक मा फेंकि देती तौ बौख्यार हम का करि लेतेन ?"

"सिपाहिन तौ पूरी डाइन है" पारवती मौसी ने कहा।

"उवा कहावत है न कि रोटी का टुकड़ा गा, कुत्ता कै जात पहचान लीनि।" कहते हुए बप्पा को लगा कि नाना की ज़मीन-जायदाद सत्ती के नाम न लिखवा कर उन्होंने अच्छा ही किया, वरना नाना पर गिरी यह गाज क्या पता, सत्ती पर ही गिरती। किसी बड़े खतरे से सत्ती के साफ-साफ बच जाने

का तोष उनके चेहरे पर छलक आया, लेकिन अम्मा की आंखें भर आयीं थीं, अपने बीमार मामा के इस तरह मार दिये जाने की बात सुन कर।

तो क्या बड़े भैया के विरुद्ध बप्पा ने सत्ती के पक्ष में इसलिए कुछ नहीं कहा। क्या वे सिपाही और सिपाहिन की तरह बड़े भैया से भी डरे हुए हैं? अब क्या बड़े भैया से गोपालपुर का आधा घर वे सत्ती को नहीं दिलवायेंगे? क्या उसके हिस्से के घर के टुकड़े से उन्होंने बड़े भैया की जात पहचानी है? कितना मंहगा है किसी की जात पहचानने का उनका यह तरीका? अरे, जिसे जितना मिलता जाता है, वह उसे हथियाता चला जाता है। एक बार हथिया लेने से फिर कहां आसानी से छोड़ता है कोई कुछ, वह चाहे अधिकार हो, मान-सम्मान, धन-दौलत या ज़मीन-जायदाद। इस सामान्य-सी बात को बप्पा जीवन भर नहीं समझ पाये और हमेशा खोते ही खोते रहे, कुछ पाया नहीं कभी। वे तो युग-युग जियें सभापति काका, जिन्होंने गोपालपुर की ज़मीन पर बप्पा का नाम डलवा दिया, नहीं तो बप्पा सब कुछ बड़े भैया के ही नाम करवा रहे थे, लेकिन ऐन टाइम पर सभापति काका ने उन्हें समझा दिया था, "नाहीं राघव' ज़मीन पर अपना नाम डरवाव, तुम्हार चार ठौ लरिका हैं और दुई बिटिया, समय क्यार कौनव ठिकाना नाइ है कि कबै का होई जाय।" बात बप्पा की समझ में आ गयी थी, नहीं तो आज बड़े भैया जैसे घर में सत्ती को आधी ईंट तक न देने की घोषणा कर गए हैं, वैसे ही एक इंच तक खेती न देने की घोषणा भी कर गये होते। तब बप्पा क्या कर लेते बड़े भैया का? फड़फड़ा कर रह ही तो जाते। अब बड़े भैया की जात पहचान गये हैं तो ही उनका क्या कर लेंगे? उनसे छीनकर आधा घर उसे दे सकते हैं? इस बुढ़ापे में क्या इतना साहस कर सकते हैं बप्पा? तमाम सारे सवाल मुंह बाकर खड़े हो गये हैं सत्य प्रकाश के सामने।

नाना की मृत्यु के बाद वैसे भी उसके घर-बार और ज़मीन-जायदाद के मामले में टांग अड़ाने का कोई औचित्य नहीं था, क्योंकि सिपाही चचेरे भाई थे नाना के। जो कोर-कसर बाकी थी, मरने के बाद कोरे कागज़ों पर लिए गये नाना के अंगूठे के निशानों ने पूरी कर दी थी। एक क्षण को मान लो कि ऐसा कुछ न भी होता तो भी क्या बप्पा कोर्ट-कचहरी जाते? नहीं जाते, क्योंकि कोर्ट-कचहरी के तो नाम से ही उनकी रूह कांपती है। वे बाकी सब कुछ कर सकते हैं, मगर कोर्ट-कचहरी नहीं जा सकते। तब तो और भी नहीं,

जब किसी के खिलाफ कोई मुकद्दमा लड़ना हो। गोपालपुर की ज़मीन लिखवाने ही बड़ी मुश्किल से गये थे, अपनी बुआ की हजार-हजार गालियां सुनने और सभापति काका के बहुत समझाने के बाद। वह भी इसलिए कि उनकी बुआ का कोई और सम्बंधी जीवित नहीं था। बड़े भैया को वे बचपन में ही अपने पास ले गयी थीं और थोड़ा समझदार होते ही सब कुछ उन्हें सौंप दिया था। इसी तरह सत्ती के नाना ज़िंदा रहते कुछ हो-हवा जाता तो हो जाता, लेकिन उनके मरने के बाद सिपाही से मुकदमाबाजी करने कौन जाता। सत्ती के बप्पा ने ही कोई पहल नहीं की तो फिर किसको गरज पड़ी थी और किसमें इतनी हिम्मत थी कि सिपाही के सम्मुख जाता, वे यू. पी. पुलिस में हवलदार जो थे।

तब से गंगा और जमुना में न जाने कितना पानी वह गया, मगर माधौ परिवार की कोई चिड़िया तक रामनगर नहीं गयी। जाने की ज़रूरत भी क्या थी। सिपाही के घर से माधौ परिवार में सम्बन्ध वैसे भी कभी मधुर नहीं रहे। कारण कि उन्होंने बिट्टी की शादी माधौ परिवार में करने का विरोध किया था, क्यों कि एक तो राघव की उम्र कुछ ज़्यादा थी, दूसरे वे दुजहे थे। उनकी पहली पत्नी से उनके दो बच्चे थे—एक लड़का यानी बड़े भैया और एक लड़की यानी माया जीजी। बाद में नाना जी की ज़मीन-जायदाद की बात भी एक गांठ बनी रही, जिसके खुलने की कोई सम्भावना अभी तक नहीं बन पायी है। फिर भी, रामनगर को लेकर सत्य प्रकाश अक्सर भावुक हो उठता है। एकाएक उसके सामने आ खड़ा होता है वह छोटा-सा गांव, रामनगर, जहां वह पैदा हुआ था। गांव के बीचोंबीच गुज़रता बटहा, गांव के एक किनारे पर नाना का कच्चा घर, चबूतरा और उससे लगा नीम का भारी भरकम पेड़, जिसकी निबौरियां इकट्ठी कर पड़ौसी बच्चों के साथ सत्ती तरह-तरह के खेल खेला करता था। घर के सामने एक कुआं था, जिसकी जगत काफी ऊंची थी और जिसमें लकड़ी की गरारी लगी थी। थोड़ी दूर पर रेलवे लाइन थी, जहां से छक् छक् छक् छक् छक् करती रेलगाड़ियां गुजरती रहतीं, धुआं उड़ाती हुई। ऊपर से सीं ऽऽऽऽ करते जहाज हवाई अड्डे पर उतर जाते। नाना की बगिया, खेत और खलिहान... और भी बहुत कुछ था। सत्य प्रकाश के दिमाग में नानी की भी धुंधली-सी तस्वीर उभरती है—सन जैसे सफेद बाल और पोपला मुंह। दुबली-पतली काया। उनकी बांह में कुछ फूल गोदे हुए थे और नाना का नाम गोदा हुआ था- राम नारायण।

हल्का-सा चित्र नाना का भी उभरता है—नाना के बाल पूरी तरह से सफेद नहीं हुए थे और दांत तो पूरे सही-सलामत थे। दोनों कान छिदे हुए थे। जिनमें पीली-पीली सोने की बारियां पड़ी हुई थीं। नाना हमेशा साफ कपड़े पहनते थे—कमीज़ और धोती। हाथ में घड़ी रहती थी और पैरों में किरमिच के जूते। बप्पा की तरह चमरौधे जूते नहीं पहनते थे नाना। बप्पा आज भी नेकर नहीं पहनते, पर नाना के नेकर और बनियान की याद है सत्य प्रकाश को। अम्मा बताती हैं कि नाना को अच्छा से अच्छा पहनने का ही शौक नहीं था, वह खाते-पीते भी अच्छे से अच्छा थे। सात-आठ बीघे खेत थे, और थी एक छोटी-सी बगिया, जिसमें आम, अमरूद और बेर के पेड़ थे, जिन्हें वे फसली ठेकेदारों को ठेके पर उठा देते थे। खेत भी बटाई पर दे देते थे और खुद दुदाही का धंधा करते। दूध लेकर कानपुर बेचने जाते और ठाठ से रहते। पढ़े-लिखे तो बहुत नहीं थे, पर हिसाब-किताब में इतने माहिर थे कि बीसियों लोग आगे-पीछे लगे रहते। बोलते तो क्या मजाल कि कहीं से भी देहातीपन झलक जाये। और ऐसा शायद शहरी जीवन से उनके हेल-मेल के कारण हो गया था, जिसका सीधा असर सत्ती पर पड़ा था, जो बचपन में ही ठेठ हिन्दी बोलने लगा था।

नाना की एक और चीज़ याद है सत्ती को, उनकी कमीज़ की ढक्कनदार जेब। जिसमें एक डायरी रहती थी और उसी में रहते थे उनके रुपये-पैसे। दूध का हिसाब-किताब वे उसी डायरी में रखते थे। नाना-नानी को आपस में झगड़ते हुए तो सत्ती ने देखा ही नहीं था, किसी और से भी उनके लड़ने का कोई वाक़या उसे याद दहीं है। सिर्फ सिपाही और सिपाहिन से उसकी बातचीत नहीं होती थी। नाना के एक खेत पर कुआं था। जिसमें अक्सर पुर चलते हुए देखता था सत्ती। अपनी जवानी के दिनों में खेती-किसानी भी करते रहे होंगे नाना। लेकिन सत्ती के पहुंचने के डेढ़-दो साल बाद नाना ने दुदाही तक बंद कर दी थी। मुर्रा का कुछ दूध बेच देते और कुछ का दही बन जाता, जिससे नानी सफेद-सफेद नेनू निकालती थीं, सत्ती के लिये। जो बच जाती, उसका घी निकाल लेतीं नाना के लिए। सत्ती तब घी नहीं खाता था। नानी मट्ठे पर ही गुज़ारा करती थीं, हालांकि घी न लेने पर नाना प्रायः उन्हें झिड़क दिया करते। कुंजड़े जब बगिया को ठेके पर ले लिया करते तो नाना की टेंट गरम हो जाया करती थी। खेतों का आधा अनाज भी फसल-दर-फसल उनकी बखारी में पहुंच ही जाता था। वे दिन बड़े अच्छे दिन थे, पर अच्छे दिन हरदम रहते कहां हैं। नानी

क्या गयीं, नाना का तो जैसे सब कुछ चला गया, रह गया है तो सिर्फ सत्ती, अकेला सत्ती। रामनगर में गुज़ारे गये तीन बरस की मीठी-मीठी स्मृतियों में डूबा हुआ। अपने बचपन के प्यार भरे ये तीन बरस सत्ती जब भी याद करता है तो उदास हो जाता है। कैसे थे वे दिन और कैसे हैं ये दिन।

उसके बाद रामनगर से उड़ती हुई खबरें ही श्यामगंज आयी हैं और सत्य प्रकाश को उद्वेलित कर गयीं हैं—कि अब सिपाही नाना रिटायर हो गये हैं, कि सिपाहिन नानी कुएं में गिर कर मर गयीं, कि उनके लड़के का एक पांव रेल दुर्घटना में कट गया, कि उनकी बहू किसी नाई के साथ भाग गयी, कि उनका पोता अब बड़ा हो गया है, कि अब उसकी शादी होने वाली है, कि वह बहुत समझदार है, कि उसने घर की डगमगाती नैया को किसी कुशल मांझी की तरह सम्भाल लिया है और यह कि अब वह श्यामगंज आने वाला है, कि वह बिट्टी की राय से अपनी बहिन की शादी श्यामगंज के ही किसी लड़के से करना चाहता है, कि वह बिट्टी को रामनगर में बुलायेगा, कि वह सत्ती को अक्सर याद करता है और यह कि टूटे हुए सम्बन्ध को वह फिर से कायम करना चाहता है ताकि आने-जाने का सिलसिला शुरू हो सके, आदि-आदि सोचते हुए अचानक सत्ती के सामने आ खड़ा हुआ चन्दू। पांच बरस का चन्दू जिसे चन्द्र प्रकाश कहते हैं, जिसने अब सत्य प्रकाश की तरह ही एम. ए. पास कर लिया है।

चन्द्र प्रकाश, सिपाही नाना का पोता, सपाहिन नानी के मना करने के बावजूद जो सत्यप्रकाश के साथ चुपके-चुपके खेला करता था—कंचे और गोलियां, छिपी-छिपौवल या फिर कोड़ेवाला खेल। कभी-कभी वे आपस में लड़ भी जाते थे, एक-दूसरे को मां-बहन की गंदी-गंदी गालियां भी बकते थे। एक बार सिपाहिन नानी ने एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था देख लिया था, तो साथ-साथ खेलने पर पाबन्दी लगा दी। लेकिन वे दोनों थे कि एक दूसरे के बिना उनका काम ही नहीं चलता था। सिपाहिन नानी खेत-खलिहान जातीं तो वे फिर साथ-साथ खेलने लगते। एक दिन वे पकड़े गए तो सिपाहिन नानी ने चंदू को ऐसा तमाचा मारा कि वह भड़भड़ा कर गिर पड़ा। उसके सिर से खून की धारा बह निकली। उस दिन के बाद वे दोनों फिर कभी साथ-साथ नहीं खेले। तब से सिपाहिन नानी उसे साक्षात् डाइन लगती रही है। कुएं में गिरकर उसके मरने की खबर जब सत्ती को मिली तो न जाने क्यों उसे खुशी-सी महसूस हुई। हालांकि व्यक्तिगत तौर पर सिपाहिन नानी ने कभी उसका कोई अहित नहीं किया था।

लेकिन आज सत्ती को लगता है कि उसके बेघर होने के कुछेक कारणों में से एक कारण सिपाहिन नानी भी थी। जिसने उसके बीमार नाना की हत्या कर दी।

हत्या! तुम्हारे पास क्या सबूत है कि सिपाहिन ने तुम्हारे नाना की हत्या की? सत्यप्रकाश के अन्दर बैठे न्यायाधीश ने पूछा।

लोग कहते हैं।

लोगों की बात पर तुम्हें विश्वास है?

क्यों नहीं।

फिर तो तुम्हें अपनी बीवी पर भी विश्वास करना पड़ेगा, जो कहती है कि अपनी भाभी की हत्या करवा दी।

नहीं, यह झूठ है योर आनर, मैंने अपनी भाभी को नहीं मरवाया, वह तो टिटनेस से मरी है। मैंने तो उसे बचाने की पूरी कोशिश की, पर मेरा दुर्भाग्य को वह नहीं बची।

तुम्हारा दुर्भाग्य, क्यों?

क्योंकि वह बदल गयी थी। मैं किसी और के लिए नहीं, अपने लिए उसे बचाना चाहता था। वह मेरे अनुकूल हो उठी थी। वह इतनी बदल गई थी कि उसका वह बदलाव मुझे सपना-सा लगता था।

सपना! कैसा सपना?

हां, सपना योर आनर, क्या कोई भाभी अपने देवर के लिए कभी इतनी चिंचित हो सकती है, जितनी कि अपने बच्चे के लिए कोई मां। बरसों तक उसे जिस रूप में पाने की कल्पना मैं करता रहा, वह मुझे उसी रूप में मिल गयी थी। वह मुझे प्यार करने लगी थी योर आनर, वह मुझे प्यार करने लगी थी, सचमुच।

मगर तुम तो उससे नफरत करते थे, जैसा कि आज भी तुमने बड़े भैया से कहा।

हां, यह सच है योर आनर, मैं अपनी भाभी से बरसों तक नफरत करता रहा और चाहता रहा कि वह किसी भी तरह से मर जाए ताकि मेरी नई भाभी आये, जो मुझे भाभी जैसा प्यार दे, लेकिन अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वह खुद ही मुझे प्यार करने लगी थी और तब कोई कारण नहीं था कि मैं उससे प्यार न करने लगता। उस वक्त तो अगर अपनी जान देकर उसकी जान बचा पाता तो मैं यह भी कर देता। काश! यह हो पाता, मेरी भाभी स्वाभाविक मौत नहीं मरी योर आनर, लेकिन इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है।

कसूर ! कैसे नहीं है तुम्हारा कसूर, लेकिन सिर्फ तुम्हारा ही कसूर नहीं है। बड़े भैया अपना कसूर तुम पर थोप रहे हैं, जिसके लिए उन्होंने तुम्हारी बीबी के पत्र का इस्तेमाल किया है। उन्होंने एक तीर से दो शिकार किये हैं। अभी तुम सब कुछ साफ-साफ नहीं समझ पा रहे हो। तुम्हें सब कुछ पता भी नहीं है और जितना कुछ तुम्हें पता है, सब का सब याद भी नहीं आ रहा। लेकिन अब जब तुम स्मृतियों के समंदर में कूद ही गये हो तो एक-एक कर सब कुछ तुम्हें याद आता चला जायेगा। तब तुम समझ सकोगे कि तुम्हारा कसूर कितना है और बाकी लोगों के कसूर भी तुम्हारे सामने स्पष्ट हो जायेंगे, लेकिन इतना तय जानो कि तुम्हारी भाभी की मौत हुई तुम्हारे कारण। जो कुछ हुआ, वह अस्वाभाविक नहीं था। अस्वाभाविक होता, अगर वह सब नहीं होता। और जो कुछ हुआ, वह अकारण नहीं था। वह तुम्हारे प्यार में बुरी तरह से उलझ गयी थी। तुम खुद भी उसे प्यार करने लगे थे।

तुम्हें याद आ रहा होगा कि यही बड़े भैया एक दिन रस्सी से बांध कर बैल गाड़ी में डालकर तुम्हें श्यामगंज से गोपालपुर ले गये थे, किसी अपराधी की तरह, जहां पराधीनता की बेड़ियां पहना दी गयी थीं।

हां, योर आनर, सत्ती को सब कुछ याद आ रहा है। बातों का एक-एक सूत्र उसके सामने स्पष्ट हो रहा है, जिसके सहारे वह सच्चाई को पूरी तरह से समझ सकेगा। यदि कोई और व्यक्ति इसे समझना चाहेगा तो उसकी भी समझ में एक-एक कर सब कुछ आता चला जायेगा, क्रमशः ...। ⊙
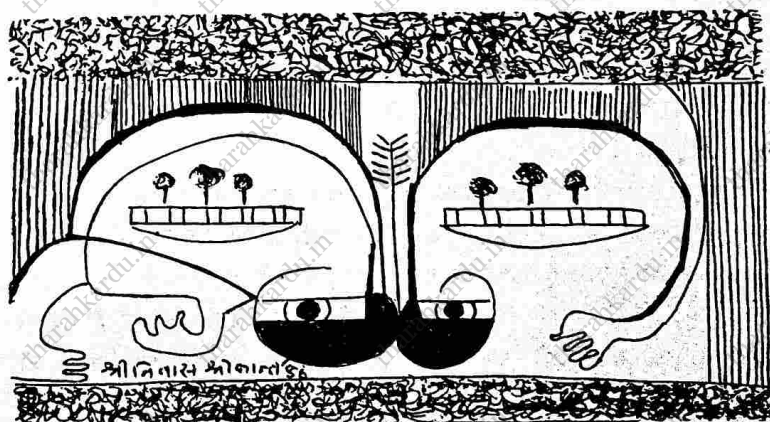
कविताओं के अतिरिक्त केशव के अब तक दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें लम्बी कहानी 'अलाव' भी सम्मिलित है। 'हर चीज के प्रति आदमी के अंदर जो आदिम असंतोष रहता है संभवतः वही आदमी, विशेषकर एक संवेदनशील प्राणी को ठहरा हुआ जल होने से बचाता है'—रिश्तों को लेकर लेखक की यह बात कहानियों में भी मुखर हुई है। अपने आपको एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे रिश्ते में लगातार खोजते चले जाना— कुछ यही विषय है केशव के प्रकाशनाधीन पहले उपन्यास 'हवा घर' का, शिविर में पढ़ा गया जिसका यह एक अंश है।

दरवाज़ा

□ केशव

दरवाज़े पर दस्तक।

मेरे और दरवाज़े के बीच की दूरी। दूरी को लपक कर बीच से हटाता कुछ। अपने से परे फेंकता। कुछ तीखा। लिसलिसा। पहले चेतना के आर-पार होता। फिर चिपकता।

जानती हूं। वही होगा। वही। यानि राजन। यानि मेरा पति। इस वक्त ? इस वक्त किसी और के आने की उम्मीद ? नहीं। नहीं। इस उम्मीद को नोचकर अपनी जगह बना चुकी है दस्तक। एक स्थान में दो तलवारें रह सकती हैं भला !

उठकर बढ़ती हूं। दरवाज़े की ओर। चार कदम का फासला। क्यों बन जाता है एक खन्दक। हर बार क्यों लगानी पड़ती है एक छलांग ?

दरवाज़ा खुलता है। कड़-कड़-कड़।

मुझे हैरानी होनी चाहिए थी। पर नहीं होती। यह मेरा ही हाथ है। हैंडल के बीच फंसा। दरवाज़े को अपनी ओर खींचता। दरवाज़ा अगर बाहर की ओर खुलता तो भी क्या मैं इसे अपनी ओर खींचती ?

'आ गये' ?

स्प्रिंग की तरह उछल कर निकलते हैं। मेरे अन्दर से। ये दो शब्द। रोज़ निकलते हैं। यही दो शब्द। जैसे शब्दों की फसल को सूखा चाट गया हो। जैसे समय के इस छोटे-से अंतराल को यही शब्द भर सकते हों। जैसे दुनियां में इन शब्दों के आकार का कुछ नहीं। कुछ भी नहीं है। जो भर सके इस अन्तराल को।

पहले शब्द। और उनके पीछे-पीछे चली आती है। एक मुस्कराहट। शब्दों को धकेलती। हांफती। आकर जम जाती है। देह का तापमान बिंदु जैसे ज़ीरो से नीचे गिर गया हो। माइनस एक ... दो ... तीन ...

इच्छा होती है कि इस पपड़ी होती मुस्कराहट को आने वाला झटके से नोंच कर फैंक दे। या अपनी उंगलियां धर दे। गर्म-गर्म उंगलियां पपड़ी पर।

मैं देखती हूं। राजन की कांख में दबी फाइल। फाइल की ओर कैंची की तरह लपकता हाथ। कांख से उतरता हाथ। फाइल में गड़ती उंगलियां। अत्य-धिक दबाव से कांपता हाथ। दबाव तले सूखे पत्तों वाली टहनी की तरह लड़-खड़ाती फाइल।

दरवाज़े के अन्दर पायदान। पायदान के बाद वाल-टू-वाल बिछा कार्पेट। सामने कोने में तिकोनी टेबल। टेबल पर लैंप। हरी झालरों वाला। टेबल के साथ एक बुकशैल्फ। निहायत करीने ने रखी चमचमाती किताबें। कुछ इस तरह कि आनेवाला किताबों में दिलचस्पी न रखते हुए भी, बुकशैल्फ तक खिचता चला जाए।

शीशे की सेंटर टेबल। दोनों ओर सोफे। खिड़कियों पर हरे रंग के पर्दे। दीवारें नंगी। उनके नंगेपन को ढांपने की कोशिश करती। आर-पार दो पेंटिंग्ज़ पूरा कमरा जैसे एक पारदर्शी गाउन में लिपटा। कुछ-कुछ नंगा, कुछ-कुछ ढका हुआ।

हर चीज़ जैसे अपनी-अपनी जगह। बिछी हुई। जैसे उनकी कोई और तरतीब हो ही नहीं सकती।

कुछ भी चुभना नहीं चाहिए। पैरों में, आंखों में। या कहीं और। भीतर या बाहर। इतना ध्यान राजन के अंदर हर पल अपना फन फैलाये रहता है। उसकी घ्राण शक्ति बहुत तीव्र है। ऐसी कि कमरे के वातावरण में चुभन के अहसास को भी सूंघ लेता है।

फिर मैं कैसे चुभ सकती हूं। मेरा चुभना तो बहुत स्थूल है। दिखाई देता है। साफ-साफ। बड़ा। और बड़ा होकर।

चीज़ों में मैं भी एक चीज़ हूं। हर पल बदलती हुई एक चीज़।

थकान के लिये तकिया । आवाज़ के लिए एक टेप-रिकार्डर । होठों के लिए एक सिगरेट । प्यास के लिए एक प्याली । भूख के लिये एक बिस्तर । वगैरह । वगैरह ।

कार्पेट को एहतियात से लांघते दो पैर । टेबल पर गिरती फाइल । और सोफे में धसती एक देह । राजन ।

'आज बहुत थक गया हूं ।'

एक आवाज़ । थकी हुई कम । ऊबी हुई ज्यादा ।

'सिर दबा दूं ।'

'नहीं-नहीं । चाय की प्याली काफी होगी ।' ऊब की तलछट कमरे में छितरा जाती है ।

अपने लगाव को मैं उस तलछट के नीचे मिमियाता देखती हूं । और नहीं देख पाती तो पलटकर किचन में घुस जाती हूं ।

गैस ऑन करते । कैटल में पानी भरते । कैटल उस बेआवाज़ लौ पर धरते । अपने हाथों को देखती हूं । एक दूसरे की मदद के लिए आतुर हाथों को । दोनों अपनी-अपनी जगह हैं । फिर भी एक दूसरे के आकर्षण में बंधे ।

कैटल में पानी खौल रहा है । भाप निकल रही है । अपना चेहरा भाप के ऊपर ले जाती हूं । ठंडे चेहरे पर बूंद-बंद अटक रही है भाप । क्या भीतर जमा हुआ कितना कुछ भाप बनकर चेहरे पर नहीं आ सकता ? ताकि आइने के सामने खड़े होकर उन बूंदों को देखा जा सके । उनके रंगों को पहचाना जा सके ।

राजन की पलकें मुंदी हुई हैं ।

राजन झपकी ले रहा है । दिन भर की थकान, ऊब, शोर को वहीं का वहीं छोड़कर । अपने साथ । सिर्फ अपने साथ रहना चाहता है इस वक्त ।

यह सोचना कितना अच्छा लगता है कि कोई अपने साथ इस कदर 'इन्वाल्व' होकर रह सकता है । इतनी निर्ममता से । कभी-कभी तो दूसरे की कीमत पर भी । राजन की अपने अन्दर रह सकने की क्षमता ? कभी-कभी तो कोई बहुत कोमल रेशा कट जाता है उसकी पैनी धार से ।

'तुम ऐसे पलों के सुख को बांटना नहीं चाहते किसी से ?'

ऐसे में एक बार निकल गया था मेरे मुंह से ।

'इतने सुख को कोई अकेले सम्भाल सकता है क्या ?'

एक हल्की ना-मालूम-सी लड़खड़ाहट थी राजन की आवाज़ में ।

जैसे कोई पत्ता हवा के झोंके से पलभर को लड़खड़ा कर भी डाल से ही जुड़ा रहे ।

दूसरे का विश्वास डाल से टूट जाये । ऐसा झोंका नहीं आने देता राजन । कुछ-कुछ सायास भी होता है यह ।

लेकिन आपकी अतिरिक्त सतर्कता ही सुन सकती है इस प्रयास की आहट को ।

मैं चाय का प्याला लिए खड़ी हूं ।

एक पल । दो पल । कई पल गुज़र गये हैं ।

कुछ होता है । शायद मेरी देह में एक ना-मालूम सी ऐंठन होती है । शायद कोई भय अपना पंजा खोलता है । शायद गुस्से या खीझ या ऐसे ही किसी भाव की गोली इधर से उधर कूदती है ।

मेरे हाथ में प्याला बहुत हल्के से कांपता है । इतने हल्के कि प्लेट में उसकी रपटन या खराश जैसा स्वर । स्वर भी क्या, स्वर का आभास, मेरे कानों तक पहुंचते-पहुंचते ही बेदम हो जाता है ।

राजन चौंककर आंखें खोलता है ।

बस यही एक कमी है राजन में । अभिनय में रंग भरने से पहले ही उसकी कूची से रंग झड़ जाते हैं । सूखकर । ऐसे में दयनीयता की एक कमज़ोर सी छाया उसके चेहरे पर तनती है । बस पल भर को ही । फिर खट् से उस छाया को कोई बीचों-बीच चीर देता है । छाया के दोनों हिस्से सिमटते-सिमटते कनपटियों के पास कहीं गुम हो जाते हैं ।

'रोशनी नहीं है ।'

राजन की आवाज़ में थकान एक धब्बे की तरह तैर रही है ।

रोशनी हमारी नौकरानी है ।

'बिट्टू को लेकर गई है । आती होगी ।'

चाय का एक घूंट ।

'ठंडी तो नहीं ।'

'ठीक है ।' अनमनेपन की खाई में एक आहट ।

दूसरा घूंट । तीसरा घूंट । एक लम्बा सिप । और प्याला टेबल पर ।

शीशे पर प्लेट की झनझनाहट । उतनी तेज़ नहीं । पर सायास । 'घर में घुसते ही अंधेरा फिर आता है । उससे कहो बच्चे को देर तक बाहर न रखें ।'

शब्दों का पीछा करते शब्द । देर बाद एक वाक्य से दूसरे में कूदती ज़ुबान । कोट के बटनों पर झपटती उंगलियां । टाई की नॉट कसती उंगलियां । कार्पेट को एहतियात से लांघते दो पैर । दरवाज़े के हैंडल को अपनी ओर खींचता हाथ । कड़-कड़-कड़ ।

राजन और मेरे बीच दरवाज़ा ठिठक गया है।

मैं छूट गई हूं पीछे।

इस तीन कमरों के घर में।

ड्राईंग रूम, बेडरूम। और तीसरा कमरा। उस तीसरे को कोई एक नाम देना मुश्किल है। मेहमान आ जाये तो गेस्ट रूम। पढ़ने बैठ जाओ तो स्टडी। या बच्चे का कमरा।

शहरों में आदमी कमरों में ही तो रहता है। लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई नापता। पर गहराई के लिए छटपटाता।

घर छोड़ते वक्त अम्मा ने कहा था।

'घर छोड़कर अब मकानों में रहना पड़ेगा तुम्हें। पर बेटी घर तो एक भावना है। अगर इसे सींचती रहोगी तो मकान भी घर लगने लगेगा।'

तब अम्मा की बात पर मैं हंस दी थी। इसलिए कि अम्मा की बात ने मुझे न टटोला था न झिंझोड़ा था। बस कहीं ऊपर हवा में ही घुल कर रह गई थी उनकी बात।

अब यह घर मेरा है।

कुछ-कुछ उसी तरह जैसे राजन मेरा पति है। बिट्टू मेरा बेटा है। जब भीतर उगने लगती है एक गुन-गुनाहट। और सारी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई को नापती है। कुछ ठगी-ठगी सी। पर बच्चों जैसी मासूम। निश्छल। और कमरे भर उठते हैं एक गुनगुनी गरमाई से। उस गरमाई में पिघलने लगती है हर चीज़।

मैं देखती हूं। उन पलों के चाक पर नया आकार ग्रहण करती चीज़ों को। मैं भर उठती हूं कुछ-कुछ अचरज। कुछ-कुछ पीड़ा। और फिर अह्लाद से।

ये तो मेरे ही हाथ हैं। घूमते चाक से लिपटे। कमरे समा जाते हैं एक आकार में। यह आकार चार-दीवारों पर पड़ी एक छत नहीं। चार खंभों पर खड़ी एक छत है। हवाघर। जिस पर किसी के नाम की तख्ती नहीं लटकती। जिसमें खिड़कियां नहीं। हवा चहलकदमी करती हुई निकलती है। आर-पार। पर्दे नहीं। धूप भर जाती है। खिलखिलाती हुई धूप।

दरवाज़े नहीं। इसलिए दस्तक से चौंकने का अभिनय भी नहीं।

खूब-खूब हवा। हर कोने को ताज़गी से भरती। खूब-खूब धूप। हर अंधेरे कोने को रोशन करती। सीलन को सोखती।

यह क्या होने लगा है मुझे।

उखड़ा-उखड़ापन। भरे-भरेपन से बूंद-बूंद रिसती उदासीनता। गर्मियों की मक्खी की तरह इर्द-गिर्द चक्कर काटती।

घूं-घूं ..किर्र...किर्र...... जिसके कानों के पास गुंगुआने से एक विचित्र किस्म की खटखटाहट उतर जाती है भीतर ।

पहले तो ऐसा नहीं था ।

चहल-पहल से परे एक बंधी-बंधायी ज़िन्दगी थी ।

खासकर इस शहर में आने से पहले ।

हम दोनों की ज़िन्दगी में एक-दूसरे के सिवा कुछ खास नहीं था ।

एक-दूसरे के निकट । एक दूसरे में उगते । बिछते । प्यार करते ।

एक-दूसरे में दबी आग में झुलसते । फिर एक दूसरे के लिए खुद को खाली होने से बचाते । उस बचे हुए को पूर्णतः की ओर ले जाते ।

घर से दफ्तर । दफ्तर से घर ।

राजन की दुनियां तो कहीं मेरी दुनियां से भी छोटी है ।

लगभग मुझसे शुरु होती और मुझमें ही खत्म होती ।

और अफसरों की तरह राजन को क्लब, काकटेल पार्टियों गप्पबाज़ी में कतई दिलचस्पी नहीं । अलबत्ता सिगरेट पीना उसे अच्छा लगता है । लेकिन वह भी शौकिया तौर पर । शायद इसलिए भी कि वक्त उसे काटने को नहीं आता । या फिर वक्त के प्रति एक तटस्थ भाव है कहीं उसके अंदर ।

वैसे भी वक्त को भरने के लिए उसके पास किताबें हैं। कुछ अजीब-अजीब विषयों की किताबें । और मैं भी हूं । जिसमें वह घंटों डूबा रह सकता है । और है अपनी इस दुनियां में मुझे आकंठ शरीक करने की ललक । अपने साथ-साथ ले चलने का विश्वास । अधिकार की भावना से उपजा विश्वास । और उससे दिपदिपाता चेहरा । कि मैं उसके साथ हूं । उसके साथ किसी भी यात्रा पर, कभी भी, बेझिझक चल निकलने को तैयार । यह विश्वास उसने मुझे छूकर ही नहीं । मुझे अपने लिए बना होने की समझ से प्राप्त किया था ।

हमारा यह घर शांत झील की तरह था ।

जिसे हवा थपथपाती । ऊपर से । मंद-मंद ना-मालूम सी लहरें उठतीं । सतह बिछती धूप । गरमाती । झर-झर गिरती बूंदें । गरमाई का अहसास दिलाती । लेकिन भीतर-ही-भीतर खामोश । शांत । न कोई लहर । न ठंड । न पर धूप । ऐसी खामोशी जिसमें हम एक दूसरे को बिना कहे भी समझते । स्वीकार करते । कभी कोई आ जाता तो इस छोटी सी दुनियां में खलल मच जाता । जैसे झील में अचानक कोई कंकड़ आ गिरा हो । अंदर की खामोशी छिन्न-भिन्न हो जाती ।

हम चौंकते । एक दूसरे की ओर देखते । ऐसी निगाहों से कि इस खलल में से किसका, कितना हाथ है । फिर धीरे-धीरे एक आश्वस्ति । हमें घेरती हुई एक साथ उमड़कर हमारे होठों पर मुस्कान बन फूट पड़ती । हम हंस भी देते । एक बहुत धीमी हंसी । जिसे हम ही सुन सकते । या जो उस घर की दीवारों में बजकर उस खामोशी को और भी गहरा और अर्थपूर्ण कर देती ।

आने वाले की आत्मीयता हमें छा लेती । हम सहज होकर आत्मीयता के उस फूल को एक-दूसरे की ओर उछालते । अपनी-अपनी तरह से उसे और गाढ़ा करते । उसकी गन्ध को घर की हर चीज़ से लिपटने देते । या फिर औपचारिकता की धुंध में लिपटे अपने कर्त्तव्य को बखूबी सरंजाम देते । उस औपचारिकता को झील की सतह छूने, उसमें उतरने न देने के प्रति सतर्क ।

एक बार ऐसा ही हो गया था ।

आने वाला हम दोनों से परिचित । बराबर-बराबर । घनिष्ठता भी थी । पर उतनी नहीं जिससे हम अपने अन्दर झांकने का अधिकार उसे देते । या वह ले सकता । हमारी सीमाएं उसे दिखाई देती थीं । उन्हें मानकर ही वह आगे आ सकता था । और वैसा होना ही प्रीतिकर होता है । अपनी सारी चालाकी और बुद्धि से सेंध लगाने की नीयत को दहलीज पर छोड़ जान-पहचान या हद-से-हद दोस्ती को लिए दरवाज़े के अन्दर दाखिल हो सकता है । उसकी आदत से हम परिचित थे । लेकिन अपनी आदत को वह अधिकार की तरह हमारी ओर फेंक सकता है, इसका हमें आभास तक न था । और इसका तो और भी नहीं कि वह अपनी ढीठ खुशी को च्यूइंगम की तरह चबाता, लापरवाही से सोफे पर पसरा, हमें अपनी आदत के सामने झुका लेने के धूर्त विश्वास से भरा, हमारी ओर अपलक देखता रह सकता है ।

हम उसके प्रति श्रद्धा से भरे, उसके बड़प्पन से घिरे, उसे अपने से बेहतर मानते आये थे आज तक । और ऐसे भाव को एकाएक पोंछ देना हमारे वश में नहीं था । खासकर तब जब ऐसे भावों ने आपके अन्दर उतरकर अपनी जड़ें जमा ली हों ।

'तुम अपनी पारिवारिक जिन्दगी के बारे में क्या सोचते हो । एक प्रत्याशित प्रश्न उछला और जा टकराया राजन से । राजन भौंचक । जैसे किसी ने वृक्ष की मज़बूत शाख को पूरी ताकत से झकझोर दिया हो ।

ऐसा नहीं था कि सवाल कठिन था या राजन के पास जबाब नहीं था उसका ।

पर आप इन सवालों की छाया से परे भी तो ज़िन्दगी को जीते चले जाते हैं। उसके बहाव में विश्वास रखे, उसके मोड़ों को स्वीकार करते। ऐसे में अहमियत सवालों की नहीं, जीने की ही रह जाती है। इसलिए ऐसा सवाल जब उस निर्बाध बहाव में अचानक लंगर की तरह आ गिरता है तो खलबली मचना स्वाभाविक है।

'तुम तो खामोश ही हो गए।'

अतिथि की आवाज़ में चुनौती और उपहास-सा उड़ाने वाला भाव था।

'जैसी होनी चाहिए थी, वैसी ही है ?

राजन के लहजे से अतिथि झटका खा गया।

यह देखकर मुझे कुछ तसल्ली भी हुई।

पर इस झटके को अतिथि की आंखों में मंडराते सरूर ने कुछ इस कदर चालाकी से सोख लिया कि मेरी तसल्ली बुझ-सी गई।

'तुम अपने पति को खूब चाहती हो न।'

अबकि मुझ पर गिरी यह बिजली। मैं चीरती ही चली गई।

अब चाहने का कोई वज़न, लम्बाई-चौड़ाई होती तो उसे माप-तोल कर बताया जा सकता था। फिर जब प्रश्न ही छेड़ने या कुरेदने की नीयत से किया गया हो तो ऐसे में उस चाहने को शब्दों से फुलाने या खींचने पर सन्तोष हो सकता है भला।

'जिसका जितना है, उतना तो उसे मिलना ही चाहिए। मेरी यह भी कोशिश रहती है कि उस 'देने' में कोई मिलावट न हो। अगर वह पूर्ण नहीं तो इतना अधूरा भी न हो कि लेने वाले के मन में कोई संशय उग सके।

मेरे जवाब की दोनों पर अलग-अलग प्रतिक्रिया हुई। राजन के चेहरे से एक तरह की शाबासी-सी बरसने लगी। उसे लगा होगा कि मैं ऐसे नाजुक मौके पर बोल भी सकती हूं और बात में कोई भी झिरी छोड़े बिना, जिसमें सुनने वाला उंगली फंसा सके, अगले की नीयत को मुंह खोलने से रोक सकती हूं।

अतिथि को शायद मुझसे ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। वह अपने इस विश्वास से अभिभूत था कि बात को खींचकर किसी भी कोने तक ले जा सकता है। जहां-तहां खरोंच लगाकर अपनी वाक्-पटुता और 'प्रोबिंग' क्षमता का सिक्का हम पर जमाये रख सकता है।

'तुम तो बड़ी गहरी और बारीक बातें कर लेती हो। कहां से सीख लिया इतना कुछ।'

अतिथि की आवाज़ में लड़खड़ाहट थी । सरूर की वजह से या फिर अपने दम्भी विश्वास के गुबारे में पिन खुबने की वजह से ।

'सिखाया जाता है जानवरों को । आदमी के अन्दर की खाइयों को तो ज़िन्दगी खुद अपने रंगों से भरती रहती है ।'

बातें तो अच्छी हो रहीं थीं । पर उनके पीछे सहजता नहीं थी । थी एक तिक्तता । एक तीखापन ।

शायद राजन को यह भी लगा होगा कि बातों के इस चक्रव्यूह में हम इस कदर न फंस जायें कि जिससे निकलना ही सम्भव न रहे ।

ऐसा था तो राजन को ऐसा लगना जायज़ भी था । क्योंकि वह अतिथि की धीरे-धीरे मोहाविष्ट कर लेने की क्षमता से वाकिफ था ।

शायद इसलिए राजन ने बात का रुख पलटने के लिए कहा, 'अरुणा कुछ खाने-पीने की भी फ़िक्र करो ।'

राजन का आशय समझते हुए भी मुझे लगा था कि जो बात शुरू हुई है उसे किसी न किसी किनारे तो लगना ही चाहिये । बीच में लटकी हुई बातें दूसरे के मन में आशंकाओं के बीच छोड़ जाती हैं । जिनमें वह किसी भी क्षण अपने दांत गड़ा सकता है । और फिर मन में रह जाने से वे कोंचती भी रहती हैं । कहने के लिए बहुत कुछ होते हुए भी ऐन मौके पर पिछड़ जाने का बोझ हर वक्त हमारी आत्मा पर लदा रहता है ।

पर राजन का कहना इससे कहीं बड़ा होकर मेरे सामने खड़ा था । इसलिये मुझे उठना ही पड़ा था... ।

राजन की हर बात मुझे बड़ी लगती है । कभी-कभी इतनी बड़ी कि उसे समेट न पाने की अपनी असमर्थता पर झुंझलाहट भी होने लगती है । मैं इतनी बड़ी क्यों नहीं हो पाती कि राजन का दिया हुआ सब कुछ समा जाये । उससे हर वक्त भरा-भरा महसूस करूं ।

ऐसे में राजन के प्रति एक श्रद्धा भाव उमड़ आता था । वह एक ऐसा वृक्ष लगने लगता था जिसकी छाया में मैं बेखटके लम्बी तानकर सो सकती हूं ।

हमारे दायरे एक दूसरे से टकराते नहीं । कहीं किसी क्षेत्र में प्राइवेट की कोई तख्ती भी नहीं । लेकिन व्यक्ति की ज़िन्दगी में एक नितान्त निजी हिस्सा भी होता है । उस दायरे के आस-पास कहीं । पहले शायद इस हिस्से को राजन के प्रति मेरी श्रद्धा ने अपनी ओट कर रखा था । न जाने कब और कैसे उस हिस्से में एक जुगनू-सी टिमटिमाहट होने लगी । यह टिमटिमाहट उचक-

उचक कर इस दायरे में कूद पड़ने की कोशिश करती है। यह रहस्यमय टिमटिमाहट कुछ-कुछ भय भी जगाती है मुझमें और आकर्षित भी करने लगी है कुछ-कुछ।

क्या इसीलिये, इसीलिये मेरे और राजन के बीच ठिठकने लगा है दरवाज़ा।

मैं सर थाम कर बैठ जाती हूं। पता ही नहीं चलता कब रोशनी बिट्टू को लेकर आ गई है।

कमरे की बत्ती भक् से जल उठती है।

एक पीला आलोक कमरे की हर चीज़ पर रंग जाता है। देखती हूं। स्विच के पास रोशनी खड़ी है। कुछ-कुछ आशंकित। कुछ-कुछ भयभीत।

'कमरे में अन्धेरा क्यों कर रखा है मालकिन। तबीयत तो ठीक है।' ⊙

लघु कथा

मनौती

□ देवेन्द्र सिंह चौहान

घुप्प अन्धेरे में कांपती टांगों को खींचता हुआ चोर बड़ी कठिनाई से मन्दिर की पहली मन्ज़िल तक ही पहुंच सका था। उसे लगने लगा कि उसके नेत्रों की ज्योति चली गई। उल्टे पैर सीढ़ियां उतर कर वह मन्दिर के प्रांगण में आ गया। उसने अनुभव किया कि उसकी दृष्टि वापिस आ गई है। कुछ समय रुकने के पश्चात् समस्त आत्म-विश्वास बटोर कर वह पुनः सीढ़ियों पर चढ़ा। इस बार टांगों की कंपकंपी और हृदय की धड़कन तो उसे अनुभव न हुई पर दूसरी मन्ज़िल पर पहुंचते-पहुंचते ही उसे लगा कि उसकी नेत्र ज्योति पुनः चली गई है। विवश होकर वह फिर प्रांगण में उतर आया। इसके साथ ही उसे लगा कि उसकी दृष्टि पुनः सामान्य हो गई है। उसने राहत की सांस ली। कुछ देर सोचता-विचारता वह यूं ही खड़ा रहा। तब उसने झट जेब से सवा रुपया निकाल कर मन्दिर की सीढ़ियों तले अपना माथा टेक कर मनौती की कि अगर मन्दिर के भीतर मूर्ति से अशर्फियां चुराने में सफल हो कर बाहर निकल सकूंगा तो यह सवा-रुपया चढ़ाने पर ही यहां से जाऊंगा।

तीसरी बार पूरे आत्मविश्वास के साथ उसने सीढ़ियां चढ़ीं। सहज-सामान्य दशा में ही वह मन्ज़िल तक पहुंच गया। अखण्ड ज्योति में मूर्ति के इर्द-गिर्द अशर्फियों की चमक देख कर एक बार तो उसकी आंखें चुंधिया गई। थोड़ी देर बाद वह अशर्फियों का थैला उठाए मन्दिर के अहाते से निकल चुका तो सहसा उसे ध्यान हो आया। मनौती का वह सवा रुपया उसकी जेब में ही पड़ा रह गया था। क्षण भर के लिए वह ठिठकर रुका। एक बार अपनी आंखों को झपकाता, देखता जांचता रहा। उसने मन ही मन सोचा, उसे भ्रम हो गया था। दूसरे ही क्षण वह अपनी गर्दन अकड़ा कर अपने मार्ग पर बढ़ गया। ⊙

गांव-कस्बे में पहुंचकर

उन्नीस नवम्बर, १९८५ को प्रातः दस बजे जोगेन्द्रनगर (ज़िला मण्डी) के पर्यटन हॉल में शिविर का उद्घाटन करते हुए विभाग के निदेशक श्रीयुत् श्रीनिवास जोशी ने कहा कि अखिल भारतीय स्तर की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को गांव-कस्बों तक पहुंचाने की यह शुरूआत है। इसके बाद शिविर में भाग लेने वाले सभी लेखकों का परिचय कराया गया। इसी उद्घाटन सत्र में धीरेन्द्र अस्थाना ने अपनी पूर्व प्रकाशित कहानी "विचित्र देश की प्रेम कथा" पढ़ी, जिस पर लेखकों व श्रोताओं ने प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक मुद्दे उठाये। सर्वश्री संजीव, सुन्दर लोहिया, केशव, बलराम और इस अवसर की अध्तक्षता कर रहे श्री योगेन्द्र कुमार लल्ला आदि लेखकों ने कहानी के विभिन्न पक्षों पर बात की। इस कहानी पर मध्यांतर के समय भोजन करते हुए तथा बाहर टहलते हुए भी लेखकों व श्रोताओं में जमकर बहस होती रही।

मध्यांतर के बाद दूसरा सत्र उपन्यास को समर्पित था। इस सत्र की अध्यक्षता श्री सुन्दर लोहिया ने की। सर्वश्री संजीव, बलराम तथा केशव ने अपने-अपने लेखन/प्रकाशनाधीन उपन्यासों के अंश पढ़कर सुनाए। क्योंकि अंश आखिर अंश ही होता है इसलिए उस पर कोई निश्चित टिप्पणी करना उचित नहीं रहता। बावजूद इसके एक अंश से काफी हद तक यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि आखिर यह उपन्यास क्या और कैसा होगा। तीनों उपन्यास अंशों पर हुई बहस का सार यहां प्रस्तुत है—

इक्कीस दिन लम्बी मौत : संजीव

योगेन्द्र कुमार लल्ला : संजीव का यह उपन्यास पश्चिम बंगाल के कोयलांचल में ज़िन्दगी और मौत के बीच जूझते लोगों के जीवन को लेकर है। यह भयावह लग सकता है लेकिन इसमें संजोयी गयी सच्चाई ही इसके भयावह होने का एक मात्र कारण है।

केशव : यह अंश अच्छा है लेकिन बीच-बीच में विवरण कुछ ज्यादा लगते हैं।

डॉ. सुशील कुमार फुल्ल : संजीव का यह अंश निश्चित रूप से प्रभावशाली है, लेकिन अनुभव भूमि के स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखता है।

यशवीर धर्माणी : हां, जिन लोगों को विषयवस्तु से परिचय नहीं, उन्हें इसका सब कुछ स्पष्ट नहीं हो सकता।

बलराम : अपने अंचल के विशेष जीवन अनुभवों को लेकर लिखना संजीव की खासियत रही है। इनकी इस तरह की रचनाओं की कड़ी में यह उपन्यास निश्चय ही अगला पड़ाव होगा। ऐसी रचना से सन्तोष मिलता है।

सुदर्शन वशिष्ठ : भयावह घटनाओं पर आधारित विशेष रूप से विदेशी लेखकों की रचनाएं मिलती हैं, लेकिन यह अच्छा बना है।

तुलसी रमण : अंश होते हुए भी यह अपने में पूर्ण है, जिसमें लगातार इक्कीस दिनों तक जिजीविषा की ज्योति लैंपों के साथ जलती रहती है। मृत्यु सामने रहते भी जीवन का एक छोटा-सा अंश अपनी समूची सांस्कृतिक धड़कनों के साथ अस्तित्व में रहता है। यही सत्य है जिसे संजीव ने पुरी क्षमता से निभाया है।

धीरेन्द्र अस्थाना : यह मेरे मुंह की बात कही कि अंश पूर्ण हैं। यह अंश अपना पूरा प्रभाव छोड़ता है।

सुन्दर लोहिया : संजीव का यह उपन्यास अंश यह सिद्ध करता है कि लेखन के लिये अनुभव की प्रामाणिकता जरूरी है। अनुभव की प्रामाणिकता के अभाव में रचना वह सामर्थ्य हासिल नहीं कर पाती जिसके बल पर उसे सही मानों में रचना कहा जा सकता है।

आधा घर : बलराम

बहस में भाग लेने वाले सभी लेखकों ने इस अंश को सुनकर लगभग एक सी राय जाहिर की—"ग्राम जीवन के यथार्थ को लेकर बलराम का 'कारावास' एक अच्छा उपन्यास हो सकता है। लेकिन इस अंश में सन्दर्भ इतने उलझे हुए हैं कि निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।"

हवाघर : केशव

डॉ. सुशील कुमार फुल्ल : केशव की भाषा में कविता का प्रभाव अक्सर देखा जाता है। इस अंश में भी यही बात हुई है।

बलराम : जिस सधी हुई भाषा-शैली में यह उपन्यास लिखा जा रहा है केशव की अधिकांश कहानियों में भी इसके दर्शन होते हैं । देखना यह है कि पूरे उपन्यास में इसका निर्वाह किस कदर हो पाता है । इसी में रचनाकार की सफलता निहित है।
संजीव : यह उपन्यास अच्छे पढ़े-लिखे लोगों यानि संभ्रांत वर्ग के लिये ही होगा। इसकी भाषा-शैली से यही झलकता है ।

अधिकांश लोगों की यही राय रही कि रचनाकार यदि पूरे उपन्यास में इस भाषा शैली का निर्वाह नैरन्तर्य के साथ कर पाया तो यह अपनी तरह की श्रेष्ठ रचना होगी ।

सत्र के अन्त में अध्यक्षीय आसन से सुन्दर लोहिया ने कहा कि इस शिविर की तरह के सृजनात्मक आयोजन निश्चय ही सार्थक हैं । इस तरह से प्रोवोक करने वाले आयोजनों के अभाव में ही अब तक हिमाचल का हिन्दी लेखन शार्प नहीं हो सका । ⊙

लघु कथा

बदबू

☐ कृष्ण कान्त वर्मा 'विवेक'

बच्चे के पीछे-पीछे डॉक्टर ने कमरे में कदम रखा, चारों ओर निगाह दौड़ा कर कमरे का निरीक्षण किया और कराहते बूढ़े की ओर बढ़ गये ।

"ओह ! तुम्हारे शरीर से तो पसीने की इतनी बदबू आ रही है कि पास बैठना भी दूभर हो रहा है ।"

डॉक्टर ने नाक सिकोड़ते हुए कहा ।

निरीक्षण के पश्चात् दवाइयों की पर्ची बच्चे की ओर बढ़ा कर अपना बैग समेटने लगे तो बूढ़े ने आंखों के इशारे से बच्चे को फीस अदा करने को कहा बच्चे ने दीवार पर टंगे पुराने व मैले-कुचैले कोट से रुपये निकाल कर डॉक्टर की ओर बढ़ाये । डॉक्टर ने नोट अच्छी तरह गिन कर अपने पर्स के हवाले कर दिये । जब डॉक्टर दरवाज़े से निकलने लगा तो अचानक बच्चे ने कहा—

"डॉक्टर साहब ! बापू इन नोटों को भी तो खून-पसीने की कमाई कहते हैं फिर इनसे पसीने की बदबू क्यों नहीं आई आपको ?"

डॉक्टर अवाक से रह गये; उन्हें शायद कोई जवाब नहीं सूझा था । अचानक बूढ़े ने कराहते हुए कहा—

"बेटा ! ये तेरे बाप का बदन नहीं नोट हैं ।" ⊙

हिमालय की दुर्गम यात्राएं आज कितनी सहल हो गयी हैं पर पच्चीस-तीस वर्ष पूर्व कितना कष्ट उठा कर पहुंचते थे अपने गन्तव्य पर ? वह कष्ट सहने में कितना और कैसा आनन्द आता था ? उस अनिर्वचनीय की अनुभूति को सन्जोए हुए हैं वरिष्ठ साहित्यकार विष्णुजी की एक दिन की डायरी के ये कुछ पन्ने।

जमना मैया का नैहर

☐ विष्णु प्रभाकर

२५ मई १९५८

ठीक तीन बजे घोरपड़े[1] ने आवाज़ दी। यन्त्रवत उठकर बाहर निकल आया। आकाश में तारों का वैभव अभी भी बिखरा पड़ा था और धरती पर अन्धकार का साम्राज्य था। दुकानदार ने कल बताया था कि यह स्थान निरापद नहीं है रीछ आदि वन्य-पशु आ जाते हैं और इक्के-दुक्के मनुष्य पर आक्रमण कर देते हैं, इसलिए प्रत्येक आहट में हमें रीछ की पदचाप सुनाई दे जाती। लेकिन उसे देखने की लालसा रह ही गई ...।

घोरपड़े ने फिर आवाज़ दी। वह चाय बना चुके थे। सारी यात्रा में सबसे पहले उठकर साथियों को उठाना और आगे की व्यवस्था करना, यह भार आप से आप उन पर आ गया था। चार बजे तक हम लोग चाय पीकर तैयार हो गये, लेकिन व्यर्थ। बोझियों और कण्डीवालों का तो पता ही नहीं। शाम को उन्हें समझाकर कहा था कि चार बजे तक अवश्य आ जाएं। लेकिन वे तो अपने हिसाब से काम करने के आदी हैं। बरामदे में खड़े होकर, फिर मैदान में आकर ज़ोर-ज़ोर से बोझियों के नाम लेकर पुकारा, लेकिन अनुगूंज

1. तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री डॉ० केस्कर के निजी सचिव।

के अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं मिला। वे लोग मजे में चट्टी पर सोते रहे और पौने पांच बजे के लगभग आये। बोले "क्या करें सा'ब, आंख लग गई।"

उनसे तर्क करना व्यर्थ था। फिर भी कुछ सख्त-सुख्त कहा ही। अनासक्त भाव से सुनते रहे, अभ्यास हो गया है। यात्री जल्दी करते हैं, झुंझलाते हैं। उनके लिए जल्दी करना स्वाभाविक है, इनके लिए अनासक्त रहना ...।

यमनोत्री में एक रात्रि बिताने का विचार हम छोड़ चुके थे। इसलिये अत्यन्त आवश्यक सामान लेकर एक बोझी को हमने अपने साथ लिया। शेष तीन में से दो को कहा कि जल्दी से जल्दी सामान लेकर फूल चट्टी पहुंच जायें और रात को ठहरने के लिए अच्छी जगह का प्रबन्ध कर लें। अन्तिम बोझी को वहीं पर राह देखने का आदेश दिया और फिर हम लोग साढ़े पांच बजे यमुना मैया के नैहर की ओर चल पड़े।

स्वीकार करूंगा कि उस गहन अन्धकार में सूनी पगडण्डी पर आगे चढ़ते समय हम नितांत भयमुक्त नहीं थे। मार्ग की कठिनता और भयंकरता की चर्चा सुनते-सुनते प्राण आतंकित हो उठे थे। लेकिन प्रातःकाल की संजीवनी वायु का परस पाकर जैसे मुरझाई शक्ति सतेज हो उठी और फिर सारा भय निर्मूल हो आया। शुरू का मार्ग कुछ विषम था। उसके बाद एक मील तक प्रायः समतल पर चलते रहे, जो एक नदी के गर्भ में जाकर समाप्त होता था। वहीं चाय की आखिरी दुकानें थीं। अनायास एक किशोर से परिचय हुआ। गौर वर्ण, प्रखर वाणी वाले इस पन्द्रह वर्षीय किशोर का नाम खेदन सिंह था। उसके बड़े भाई थे, परन्तु सभी सौतेले पिता स्वर्गवासी हो चुके थे, इसलिए किसी-न-किसी बात को लेकर परिवार में नित्यप्रति कलह होती रहती थी। अन्त में बड़े भाईयों ने सब कुछ हथियाकर उसे और उसकी मां को एक दिन घर से निकाल दिया। लेकिन उस साहसी ने जीवन से हार नहीं मानी। मां और छोटे भाई-बहिनों को लेकर वह अलग रहता है और यात्रा के दिनों में चाय का होटल चलाकर उनका लालन-पालन करता है। खेती और भेड़ें भी हैं। उन्हें मां देखती है। बोला, 'सा'ब मेहनत करता हूं। आपकी दया से अब सब ठीक है। वे रखें अपनी दौलत।'

भाई का होटल बराबर ही था। देखने में वह कुछ उद्धत नहीं दिखाई दिया। पर खेदनसिंह की दुकान पर भीड़ देखकर उसे दुख अवश्य हो रहा था। चाय पीते-पीते मैं उस कहानी पर विचार करता रहा। हिन्दू परिवार की यह

चिर-परिचित गाथा क्या सदा उसे त्रस्त करती रहेगी ? क्या यह हमें सोचने को विवश नहीं करती कि हमारे सामाजिक मूल्यों में ठहराव आ गया है, इसलिए यह दुर्गन्ध है, इसीलिये परिवर्तन अनिवार्य है ? दूसरी ओर खेदनसिंह के इस अदम्य आशावाद ने हमें एक नई स्फूर्ति से भर दिया ।

आगे अब कोई चट्टी नहीं है । है केवल ढ़ाई मील की प्राणलेवा चढ़ाई । जहां चाय की अंतिम दुकानें हैं, उस घाटी को गणधारा कहते हैं । कण्डीवाला बताता है, 'यह गणधारा सामने के उस गणकुंजर पर्वत से निकलती है । इस पर्वत पर शंकर भगवान रहते हैं ।'

शंकर कहां नहीं रहते ? सारा कैलाश ही उनका आवास है । और कैलाश का अर्थ होता है, साधारण जनता के लिए संपूर्ण हिमालय ।

जब हमने यमनोत्री की चढ़ाई शुरू की तो मन पर आतंक छाया हुआ था । लेकिन बहुत शीघ्र उल्लास ने उसे अपदस्थ कर दिया । शीतल मंद समीर, हरा-भरा सघन वन-प्रांत, नाना प्रकार के वृक्ष, लता और द्रुमदल । आतंक कैसे टिक पाता ? उन्हें निहारते, परखते, हम धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे । बहुत तड़के चले थे और गगनचुम्बी पर्वत वृक्षों से आवृत थे । इसलिए ऊपर जाने वाली पतली पगडण्डी पर चलते हुए सहज ही सूर्य ताप से रक्षा हो जाती थी । लाल फूलों से लदे बुरांस, हरे-भरे खरसू औह कलापूर्ण थनेर के अतिरिक्त राई, बांज (ओक) मुरेण्ड और मनेर आदि अनेक प्रकार के वृक्षों और लताओं से परिचय करते हुए हम सोल्लास ऊपर चढ़ते चले गए । और प्राकृतिक दृश्य और भी मोहक होते गए । हम लोग जहां कहीं सांस लेने के लिए रुकते तो पीछे मुड़कर देखते नैसर्गिक सुषमा के विस्तार को । वृक्षों के परिवार मानो हमारे स्वागत को दल बांध कर आये हों ।

मार्ग कहीं पथरीला, कहीं रेतीला । अब लौटते हुए यात्री मिलने लगे थे । जैसे विभिन्न प्रांत, विभिन्न वय, विभिन्न वर्ग, वैसे ही विभिन्न उनके अनुभव । बिहार के एक विशाल वक्ष, श्वेतकेशी, गौरवर्ण वृद्ध, लम्बा कोकटी का कुर्ता पहने, बगल में हवाई सर्विस का एक बैग दाबे जब सामने आये तो अनायास ही गद्‌गद् स्वर में बोल उठे, 'हे नाथ, हे प्रभु, आपकी कृपा से सब कुशल है ।'

श्रीप्रभा[1] ने पूछा, 'आगे का मार्ग कैसा है ?'

बोले, 'मां, अब कुछ नहीं । सब आनंद-ही-आनंद है ।'

---

१. श्री यशपाल जैन की बहन

एक पूर्व-परिचित बंगाली बन्धु उत्फुल्ल, विभोर। ललक कर ऐसे भेंटे मानो एवरेस्ट-विजय कर लौट रहे हों। आंखें गहरा आई थीं। उस भाव-व्यंजना के सामने भाषा व्यर्थ हो रही। जबलपुर के एक कृष्णवर्णीय क्षीणकाय वृद्ध तो चरण छूने लगे। कांपते-कांपते वह पुकार रहे थे, 'जय जमना मैया, पार कर दे मैया।'

अत्यंत त्रस्त एक नारी अपने ही भार से जैसे पिसी जा रही हो। जिह्वा पर उसके एक ही वाक्य था, 'हे भगवान, कैसा भयानक मार्ग है।' दूसरी महिला थी अत्यंत उल्लसित। वाणी में ओज, नयनों में गर्व और गति में दृढ़ता लिए नीचे उतर रही थी। तभी सहसा चौंक उठा। देखता हूं कि जैसे ही एक बंधु को देख कर यशपाल जी ने 'जय यमुना मैया उद्घोष' किया तो वह क्रुद्ध हो उठे, 'क्या जय-जय करते हो? आगे चलकर छठी का दूध याद आ जायेगा।' प्रकृति में नाना रूप विविधता है, मनुष्य के चिन्तन में भी वैसी ही अनेक रूपता है। फिर भी उस बन्धु ने ये शब्द आवेश में कहे थे। थक गये थे बेचारे। लेकिन अधिकांश यात्री उल्लास और आनन्द से भरपूर हैं। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही तो उन्होंने प्राण संकट में डाले हैं। और लक्ष्य प्राप्त करने का जो आनन्द है वह अनिर्वचनीय है।

हमारे दल में आज काकूजी (शोभालालजी) और काकी सबसे आगे हैं, जैसे हमें चुनौती देकर चले हों। मार्ग में कहीं भी उनसे भेंट न हो सकी। मटियाली के बाद कोई एक मील तक की बड़ी कठिन चढ़ाई मिली। पर्वत प्रदेश के मील, मैदान के मीलों की अपेक्षा बहुत लम्बे हो जाते हैं। यह एक मील चढ़ने के बाद ऐसा मालूम हुआ मानो दिन भर चलते रहे हों। एक स्थान पर रास्ता चट्टान को काट कर बनाया गया था। इसी कारण वह न केवल संकरा था, बल्कि झरनों का पानी आ जाने के कारण उस पर फिसलन भी थी। पैर जमाकर धीरे-धीरे चलना पड़ा। परन्तु जब शिखर पर पहुंचे तो प्राण जैसे पुलक उठे। इसी पुलक से भरे-भरे हम तुरन्त आधा मील दूर चीर भैरव पहुंच गये। देखता हूं वहां एक लघुकाय मन्दिर है और उसी के आस-पास पेड़ों के सहारे रस्सियों पर कपड़ों के अनेक टुकड़े बन्धे हैं। बड़े-छोटे, सीधे-टेढ़े, लाल-पीले, श्वेत-नीले, यमनौत्री के दर्शन करके लौटते समय यात्री लोग यह टुकड़े बांध देते हैं। इसे भैरव की ध्वजा कहते हैं। मान्यता है कि अपने कपड़ों में से

फाड़कर जब तक टुकड़ा यहां न चढ़ाया जाये तब तक यात्रा सफल नहीं होती। यह भी माना जाता है कि कोई मनोकामना करके ही यह चीर बांधी जाती है। जब वह मनोकामना पूरी हो जाती है तब उस व्यक्ति को यहां आकर चीर खोलने का विधान है। वस्तुत: उत्तराखण्ड के तीर्थ-स्थानों में भैरवनाथ का बहुत महत्व है। सभी तीर्थों में मुख्य स्थान आने से पहले भैरव-नाथ का मन्दिर आता है। वह इन सभी देवताओं के प्रहरी हैं।

यहां से उतार आरम्भ हो जाता है। काकूजी और काकीजी यहां भी हमारी राह देखने के लिए नहीं रुके थे। लेकिन हमने पीछे जाने वाले साथियों को साथ ले लेना उचित समझा। सबसे पहले पहुंचे मार्तण्डजी[1]। उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा, 'हमारे साथ आज एक दुर्घटना हो गई।'

पर्वत प्रदेश में दुर्घटना का अर्थ बहुत गम्भीर होता है। क्षणभर में न जाने क्या-क्या सोच डाला। व्यग्रता से पूछा, 'क्या हुआ ?'

उसी शांत भाव से बोले, 'बहुत बुरा हुआ। पानी की बोतल का कार्क हाथ से छूटकर घाटी में गिर पड़ा बेचारा च च च्च ...।'

अब तो वह अट्टहास गूंजा कि अनुगूंज से वह दुर्गम पर्वत प्रदेश भी मुकुलित हो उठा। लेकिन मार्तण्डजी पूर्ववत बोले 'आप हंसते हैं। यह कोई छोटी-मोटी दुर्घटना नहीं है। देखिए तो कार्क न रहने के कारण बोतल के पानी ने छलक-छलक कर मेरी जाकट का क्या हाल कर दिया है।'

सचमुच उनकी जाकट बिल्कुल भीग गई थी। हमारे मन भी हंसी से भीग आये। कुछ ही दूर चले होंगे कि सामने की घाटी में यमनोत्री की चट्टी दिखाई देने लगी। उतरते-चढ़ते, हंसते-हंसाते हम शीघ्र वहां पहुंच गये। लगभग पौने नौ का समय था काकूजी और काकीजी हमारी राह देख रहे थे। लेकिन मैं तो यमनोत्री की घाटी को देखता रह गया। न है भव्य हिम शिखर, न है हरी भरी उपत्यका, एक नितांत संकीर्ण घाटी, मानो किसी उपेक्षिता तपस्विनी का आवास हो। इन दुर्गम प्रदेशों में हर नदी की रक्षा करने के लिए दोनों ओर उत्तंग हिम शिखर होते हैं। पर नन्हीं जमना को तो उन्होंने मानों यमदूतों की भांति घेर लिया है। शायद यमराज ने अपनी बहन की रक्षा के लिए उनको विशेष रूप से नियुक्त किया हो। कुछ दूर चलने के बाद उमंगती उछलती गरुढ़ गंगा जब यमुना से आकर भेंटती है तभी उसमें कुछ निखार आता है। लेकिन पर्यटक के मन पर इस घाटी की जो छाप पड़ती है, वह है भीषण गांभीर्य, घोर वैराग्य

---

1. सस्ता साहित्य मंडल के मंत्री (अब स्वर्गीय)

और कठोर तप की । यहां केदारनाथ की सी भव्यता है, न त्रियुगी-नारायण की सी वनश्री । बदरीनाथ के नर-नारायण पर्वतों की शोभा भी नहीं है । सूर्य की पुत्री और यम की बहन का प्रत्यक्ष रूप कैसे सुंदर हो सकता है । कठोर तप और साधना बाहरी सौंदर्य की अपेक्षा नहीं रखते ।

सहसा असित ऋषि की मूर्ति नयनों में भर उठी । इस प्रचण्ड शीत प्रदेश में यमुना के उद्गम को खोज निकालने वाले इस तपस्वी ने कैसी कठोर साधना की होगी । इनके साथ ही याद हो आई उन बारह ऋषियों की, जो शंकर के साथ लंका से लौट कर यहां बस गये थे । और महावीर हनुमान की भी याद आई । किम्वदन्ती है कि २०७३१ फुट ऊंचे बन्दरपूछ हिमशिखर पर वह आज भी बैठे हैं । रामचन्द्रजी जब लंका विजय के बाद अयोध्या में लौटकर राज्य करने लगे थे तब उनकी आज्ञा लेकर थकान उतारने के लिए हनुमान जी सुमेरू शिखर पर आ बसे थे । कथा आती है कि एक वानर आज तक प्रतिदिन वहां आता है । तीव्र शोत के कारण यहां खाने को कुछ नहीं मिलता । इसलिए बेचारे को पूछ गंवानी पड़ती है । त्रेता युग से अब तक करोड़ों वानरों ने अपनी पूछें यहां गंवाई हैं, इसीलिए इस शिखिर का नाम बन्दरपूछ पड़ गया है । कहानी रोचक है, पर यह आवश्यक नहीं कि सत्य भी हो । हो ही नहीं सकती । आर्य जाति में यह प्रथा रही है कि जहां भी वह पहुंचती रही है अपनी कोई न कोई कथा उस स्थान से जोड़ देती रही है ।

दूरबीन उठा कर मैं इस विचित्र शिखर की ओर देखता हूं । सहसा दो पतली-सी धवल रेखाएं दिखाई देती हैं । ये दोनों रेखायें नीचे आते-आते एक हो जाती हैं । लेकिन प्रारम्भ में एक का नाम है कालिंदी और दूसरी का यमुना । कालिंदी नाम इसलिए पड़ गया है कि बन्दरपूछ के जिस भाग से वह निकलती है उसे कलिंदगिरि कहते हैं । कलिंद सूर्य का भी एक नाम है और यमुना सूर्य-पुत्री है । इसलिये उसका नाम कलिंदजा भी है । जिस स्थान से यमुना निकलती है वहां जामुन का एक वृक्ष बताया जाता है । उस वृक्ष तक पहुंचने का साहस हम लोग नहीं कर सके । यमनोत्री के चार मील ऊपर वह वास्तविक उद्गम के पास बताया जाता है । स्वामी रामतीर्थ जैसे औलिया ही वहां पहुंच सके थे । पर इतनी ऊंचाई पर कोई वृक्ष हो सकता है, यह असंभव है । लेकिन आज भी यह विश्वास है और पाण्डे लोग कहते भी हैं कि यमनोत्री में दिव्य शिला पर जो रूप चित्रित है वही रूप वास्तविक उद्गम के स्थान पर भी है ।

हम लोग अभी यमुना के तट पर घूम रहे थे। लेकिन जब यात्री लोग लकड़ी के डगमगाते भयानक पुल से यमुना की कलकल करती अनेक धाराओं को पार करके उस ओर पहुंचते हैं तो पण्डे सबसे पहले उन्हें दिव्य शिला पर ले जाते हैं। वे कहते हैं "ऊपर पहुंचना बहुत कठिन है इसलिए यमुना मैया अपने भक्तों पर कृपा करके यहीं प्रकट हो गई हैं। आप यहीं पर पूजा-पाठ कर लीजिए।" जो श्रद्धालु हैं, वे सहज भाव से इस तर्क को स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन जो पर्यटक हैं वे कैसे स्वीकार करें।

दिव्य शिला के निकट ही तीन तप्त कुण्ड हैं। निरन्तर धक-धक फक-फक करते ये कुण्ड यहां का सबसे बड़ा आकर्षण हैं। इनमें गन्धक की गन्ध नहीं है। सबसे पहला है सूर्य कुण्ड। उसके जल का तापमान १९४.७ डिग्री है। प्रसाद के लिए यात्री लोग इसमें आलू और चावल पकाते हैं। एक पोटली में बांध कर वे पदार्थ उस खौलते जल में डाल दिये जाते हैं। थोड़ी ही देर में वे पदार्थ उबल कर ऊपर आ जाते हैं।

सूर्य कुण्ड से थोड़ी ही ऊंचाई पर ऋषि-कुण्ड है। इसमें यात्री लोग स्नान करते हैं। इसका जल भी काफी गर्म है। सहसा पैर देना कठिन है। पर धीरे-धीरे शरीर उस तापमान को सह लेता है। हम लोगों ने बड़े आनन्द से स्नान किया। जल की उष्णता के कारण बहुधा सिर में चक्कर आ जाता है। लेकिन यदि उसे ठण्डे पानी से भिगो लिया जाये तो ऐसा नहीं होता। हम लोगों के दल में प्राकृतिक चिकित्सा के कई प्रेमी थे। मार्तण्डजी और यशपालजी गर्म में स्नान करने के बाद तुरन्त यमुना की शीतल धारा में स्नान कर आये। क्या उन्हें यम के उस बरदान की याद आ गई थी, जो उन्होंने अपनी छोटी बहिन यमुना को दिया था, "जो मनुष्य एक बार भी तुम्हारे जल में स्नान कर लेगा उसे यमलोक नहीं जाना होगा।"

जब हम लोग गर्म कुण्ड में स्नान कर रहे थे तो यशपाल जी ने यमुना से हिम जल लाकर हम लोगों के सिर पर भी डाला। शीतल और उष्ण का यह संयोग सुखद रहा। बाहर जाने को मन नहीं करता था। लेकिन समय निरन्तर बीत रहा था और आकाश में मेघ शावक दिखाई देने लगे थे। किस क्षण वे शावक उग्र रूप धारण कर पूरे विस्तार को ग्रस लेंगे, यह कहना कठिन था। इसलिये अनिच्छापूर्वक कुण्ड से बाहर आये। इसी कुण्ड के पास एक और छोटा-सा कुण्ड है। आसपास और भी धाराएं-शिलाएं और कुण्ड यात्रियों की

श्रद्धा पर डाका डालने के लिए पण्डों ने बना लिए हैं और उनके नाम रख लिये हैं वसुधारा, सहस्रधारा, गौतम ऋषि धारा, गुप्तमुनि धारा, द्रोपदी कुण्ड इत्यादि इत्यादि। आग्रहपूर्वक यात्रियों से कुछ न कुछ चढ़ाने के लिए कहते हैं। लेकिन स्वयं यह भी नहीं जानते कि यमुना की कहानी क्या है। इसके अतिरिक्त अव्यवस्था यहां इतनी है कि उबलता पानी पगडण्डियों पर बहता रहता है। चढ़ना-उतरना संकट से मुक्त नहीं है। सूर्य कुण्ड से और ऊपर जाने पर एक छोटा-सा मन्दिर मिलता है। जितना छोटा है उतना ही आकर्षणहीन है। उसमें श्यामवर्ण यमुना और गौर वर्ण गंगा दोनों की मूर्तियां हैं। पुराणों के अनुसार यमुना गंगा की बड़ी बहन हैं परन्तु उसने छोटी बहन के लिए अपना अस्तित्व मिटा दिया है। यह मन्दिर भी उसी स्नेह का साक्षी है। क्या ही अच्छा होता कि इस मन्दिर को कुछ कलापूर्ण बनाया जाता। बाहर एक पेटी रखी हुई है। उसमें कुछ पैसे डाल दिये हमने। अन्दर जाकर पुजारी से पूछा, "यह बाक्स किसके लिए है ?"

उसने उत्तर दिया, "उनके लिए हैं, जो अंदर नहीं जा सकते।"

मैंने पूछा, "अन्दर कौन नहीं जा सकता ? क्या अछूत ?"

"जी हां।"

"तब हम भी अछूत हैं।"

यह कह कर शोभालालजी और मैं बिना दर्शन किये बाहर आ गये। इस पुनीत प्रदेश में छूत-अछूत का भेद-भाव देख कर मन को बहुत पीड़ा हुई।

रुकना नहीं था, सो कुहरे के आक्रमण से पूर्व ही लौटने का निश्चय किया। आते ही एक दुकानदार को पूरियां बनाने के लिए कह दिया था। जब तक नहा कर लौटे, तब तक पूरियां और आलू का साग तैयार हो गया था। भूख भी खूब लग आई थी। धर्मशाला के खुले बरामदे में बैठ कर आनन्दपूर्वक भोजन किया। पत्तल के स्थान पर यहां भोजपत्र मिलते हैं। इन्हीं पत्रों पर ही हमारा बहुत-सा अमूल्य प्राचीन साहित्य सुरक्षित है।

भोजन करने के बाद एक बार फिर हम तप्त कुण्ड पर पहुंचे। मन करता था कि फिर स्नान करें, लेकिन मेघ-शावक घनीभूत होते आ रहे थे। अच्छा होता कि हम एक रात यहां रहते। लेकिन ऐसी सुविधा न होने के कारण यह सम्भव न हो सका। यात्रियों और हमारे बोझियों ने हमें आतंकित कर दिया था। लेकिन काका कालेलकर यहां एक रात ठहर चुके हैं। उन्होंने

लिखा है, "हमने यहां रात कितने आनन्द से बिताई, मानो किसी लम्बे सफर के बाद पहुंचे हों। गर्मी और ठण्ड के बीच करवटें बदलते हुए हम रात के एक-एक क्षण का माधुर्य चख सके। हमने अपना एक घण्टा भी गहरी नींद में न खोया।'

क्या हम लोग इस अद्भुत अनुभव का लाभ उठाने के अयोग्य थे। लेकिन दल में तो बहुमत का ध्यान रखना पड़ता है। लौट पड़े। एक बार फिर सुमेरू के हिम-शिखर को देखा। देखा वाष्पाच्छादित तप्त-कुण्डों को।

इन्हीं के सम्बन्ध में काका साहब ने लिखा है, "यह मानने के बजाये कि यहां गर्म पानी के कुण्ड देख कर असित ऋषि ने इस स्थान को चुना होगा, मेरा सुझाव यह मानने की तरफ है कि ऋषि के यहां रहने के निश्चय करने पर उसके संकल्प-बल से विवश होकर प्रकृति ने अपने विश्वास के रूप में यहां उष्ण झरने प्रकट किये हैं।

अन्त में देखा, वेगवती गम्भीर यमुना के शैशव रूप को जो बालोचित चपलता से पाषाण-खण्डों के संग आंख-मिचौनी खेलती हुई निरन्तर आगे बढ़ रही है। ... फिर स्मरण किया, असित ऋषि और शंकर के साथी बारह ऋषियों को। अन्त में प्रकृति को प्रणाम करके आकाश के विस्तार को घेरती घटाओं को देखते हुए उल्लास से भरे-भरे हम प्रणाम की मुद्रा में वापस लौट पड़े। हम समझ गये थे कि जीवन का रहस्य समझने के लिए यहां आना कितना आवश्यक है। ⊙

[८१८, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-११०००६]

लघु कथा

ईद का चाँद

□ श्रीराम मीना

मुर्गा अलसुबह बकरे को— कुकड़-कूं करके जगा रहा था। "उठो मेरे प्यारे दोस्त ! आज ईद है, लेकिन मुर्गा उठने का नाम ही नहीं ले रहा था। मुर्गा फिर बोला— अरे उठो भाई आज बकरा ईद है। कब तक सोते रहोगे...? और बकरा झटके से उठ कर खड़ा हो गया। उसका सारा बदन थर-थरा रहा था। उधर ईद का चांद मुस्करा कर मैं मैं कर रहा था......

कविता

छः कविताएं

□ वीरा

गहमागहमी

हलचल थी
पत्तों के हलकों में
गहमागहमी

सब
एकजुट हो गए थे

पेड़ के खिलाफ
जंगल के खिलाफ
हवा
उनके साथ थी ।

उम्मीदें

इंतज़ार की आंखों-सा
रुका हुआ है
नदी का पानी
उन उम्मीदों के लिए
जो ढेर दियों-सी
झिलमिलाती
हाथों-हाथ चली आ रही हैं

आईना

आईने ने मुझे
उम्मीद की तरह
देखा—मैं खुश हो गयी
आईने ने मुझे
स्नेह की तरह
छुआ—मैंने उसे सहलाया
आईने ने मुझे
विश्वास की तरह
थामा—मैंने उसे
अपनी आंखें दे दीं।

पहाड़

पहाड़ का दर्द देखो
कि वह कैसे
अलग हो रहा है
अपनी चट्टानी संरचनाओं से

पहाड़ का अकेलापन देखो
कि वह हमेशा इंतज़ार में है
कब कोई पास आएगा
भले ही अपनी तसल्ली के लिए

पहाड़ का डर देखो
कि वह कैसे फ़िक्रमन्द है
अपनी उम्र के लिए
हमारी बढ़ती उम्र के साथ।

मोहर

जागता हुआ बच्चा
जगाता है
एक ठोस विश्वास
ज़िन्दगी में हृदय के भीतर

और
सोये हुए बच्चे का चेहरा
लगाता है
ईश्वर की मोहर
इस दस्तावेज़ के ऊपर ।

उजाले में घर

जब भी
हम लौटते हैं
घर उजाले में
तो बहुत अपना-अपना सा
लगता है घर

बस-स्टैंड से
शुरू होता है
घर को जो रास्ता
उस पर साफ़-साफ़
दीख पड़ते हैं
हंसते-खिलखिलाते
रंगबिरंगी स्कूली वर्दियों में बच्चे
पूरा शहर उठाए दुकानें
लाल बजरी वाली गली
नलों से बहता पानी
खुले दरवाज़ों से झांकती औरतें

साफ-साफ दीख पड़ता है
घर का दरवाज़ा
अन्दर की वे सब चीज़ें
जिन्हें जल्दी में हम
बेतरतीब पड़ा छोड़ गए थे

वे ही कमरे
वे ही खिड़कियां

पूरे घर को
गुदगुदाती है धूप
कमरे में आकर

आती है हवा
हमारे साथ आसपास लिपटी
जो हर कोने का
जायज़ा लेती है
कैलेन्डर की तारीखें
मुस्कुरा कर
देखती हैं हमें

घड़ी की सुइयां
चलती-चलती रुक कर
स्वागत करती हैं
हमारा

और हम घर की
ढेर-ढेर हवा को
देर तक सांसों में भरते हैं

लेकिन कुछ भी
नहीं होता इसमें से
जब भी हम

लौटते हैं घर
देर में काम से थक कर
उदास रूठे बच्चों की तरह
शिकायत करता हुआ घर
डूबा हुआ अंधेरे में
खड़ा रहता है गुम-सुम
नाउम्मीदी सा ।

सृजन का दर्द

□ योगेन्द्र सिंह 'तूर'

धूल का पंजा उठा
और मेरी खाकों पर आ बिछ गया
जिन्हें वर्षों प्यार से सहेजा था।

बढ़ना चाहा आगे—किन्तु
हर मोड़ सर्दीला उकड़ू बना मिला
बेहद बर्फ़ीला।

अब
धैर्य का सागर सूख चुका है
रेत की चादर ओढ़ चुका है।

वह
उल्लुओं की दहशत भरी आवाज़ों के आगोश में
नंगी बरसाती नदी के तटों पर
दूर दूर तक बिखरा है।

आह !
कैसी विडम्बना !
आज मैं अपनी ही आवाज़ से डर जाता हूं।

क्योंकि ?
हर पेड़ की आड़ में घात लगाए बैठा है
शब्दजाल
निबंध
छंद मुक्त
भूख जंगली बिलार की तरह
मोटे-मोटे चमकीले डैने फाड़े
मेरे जीवन के हर अर्थ को
रोटी का चुराया हुश्रा टुकड़ा समझ कर
खाने को
बारम्बार झपट चुका है ।

आज हर नदी
सहमी-सहमी बहती है
हर पहाड़
बुज़ुर्ग की लाठी का सहारा लिये
पछाड़ खाता
हिचकोले लेता उठता है
जंगलों में सन्नाटा
लस्सी के कटोरे में
बर्फ के टुकड़े की तरह
जमता है
धरती की पथराई दो आंखें
आकाश गंगा के आंसुओं में भिगोई
अजगर कि जिह्वा और
पागल कुत्ते के दांतों पर
डूबते सूरज की
संध्या के कब्रगाह में दफनाई है।
ओह !
कितनी पीड़ा कुलबुलाती है

मेरे भीतर !
सृजन की पीड़ा कहो या मौत की
कोई फ़र्क नहीं पड़ता ।
आज मैं अपने दामन को
अनगिनत थिगलियों से सी कर
हर अंधकार से
प्रकाश के डेरे का पता पूछता हूं।
सदियों से
जो रूठा है मुझसे
आज बैसाखियों के सहारे ही
उसे मनाने निकला हूं।

किन्तु सावधान !
भूलभुलैयां के चक्र में
दम न तोड़ दूं
कोई भूखा कसाई
भटका हुआ
आवारा पशु समझ कर
हलाल न कर ले।

उस चौराहे पर खड़ा हूं यारो !
जिसे चारों दिशाएं
अपनी लपलपाती जिह्वाओं से
लील रही हैं।

मेरे भीतर धीरे-धीरे
कुछ मरणासन्न होने लगा है
इसी लिए सूखे होठों पर
मौन देने लगा है पहरा।

(डिग्री कालेज थुरल, हि०प्र०)

बैल

□ कुमार कृष्ण

जब भी बरसता है पानी और
पोखर में लौट आता है मौसम
उसकी बूढ़ी हड्डियां
खुशी से कांपने लगती हैं

वह जानता है अच्छी तरह
अगली सुबह होगी उसके सामने
नर्म घास औ'
हांक दिया जाएगा वह खेतों की ओर
बार-बार हांकने का दूसरा मतलब—बैल है

जब भी बदलता है मौसम
वह उगाता
करोड़ों रोटी के दरख्त
फिर भी लोग देते दुहाई
पोखर के ग्राम देवता की
बूढ़े बैल की मुशक्कत लौट आती
खुरों के पास हर बार
मौसम बदलने पर

मेरे कुछ दोस्तों के लिए
रोटी के दरख्त उगाने वाला वह जानवर
एक खतरनाक मौत है
बहुत जल्दी पहचान लेते हैं लोग
उसके सींगों का भय
वैसे भी पहचान करवाने का
खबसूरत करिश्मा है—भय

गांव से शहर तक
खांसता है वह बूढ़ा पंजर
खेत जोतने से लेकर
ठेले खींचने तक की मुशक्कत
कभी बहस का मुद्दा नहीं बनती
वैसे हर मौसम में नलवाड़ी
उसके बिकने की दासतां है

शायद तुम नहीं जानते
यह जानवर
कितनी साज़िशों में शामिल है
गांव में
साल में कितनी बार खड़ा होता है
कचहरी के कटघरे में
रोटी के दरख्त उगाने वाला वह जानवर
कितनी बार होता है नीलाम
रोटी के लिए
कितनी बार तय करती हैं
झूठी शहादतें उसका भविष्य
मेरे कुछ दोस्त इसे नहीं जानते

मेरे कुछ दोस्त नहीं जानते
बैल किस तरह बनता है जूता
लगातार ज़मीन से
घिसते हुए, टूटते हुए
जीने का नाम जूता है
मेरे दोस्त नहीं जानते
बैल का असली रूप यही है
जूता—
बैल की मुशक्कत की अंतिम इच्छा है

वैसे उस जानवर को
कविता के खूंटे में बांधना
आसान काम नहीं
जो हर बार नये नाम से लांघता है
नया दरवाज़ा

जितनी बार झुकता है वह
पोखर के पानी पर
महसूस करता है एक पूरा दरख्त
फटी हुई गर्दन पर

फटी हुई गर्दन की तकलीफ
फैल जाती है पोखर में
जिसे पी कर लौट जाता है वह हर बार
मौसम बदवने पर

कुछ दिनों से
जीभ की लार में उतरा उसका गुस्सा
खाने लगा है—रोटी के दरख्त
शायद इसीलिए
बहुत ज़रूरी हो गया
उसके बारे में बात करना
मेरे कुछ दोस्त इसे नहीं जानते

वैसे मेरे कुछ दोस्तों ने लिखे हैं
दर्ज़नों निबन्ध
उस जानवर के बारे में
जिसमें कई बार आया है ज़िक्र
उसकी टांगों का, उसके सींगों का
उनके लिए
रंभाने वाली मशीन है बैल
मैं जिसे मार खाया चमड़ा कहता हूं
जिसकी पूरी ताकत खत्म करवा दी थी
हल जोतने से पहले रामसिंह ने।

देर तक नहीं फैला सकता झूठा डर
मार खाया हुआ चमड़ा
चाहे झूठा हो या सच्चा
दोस्तो डर तो डर है

जब भी रुकता है पानी
और अचानक बिदक उठते हैं
जानवरों के रेवड़
घबरा जाता है
रामसिंह का परिवार
फूल उठता है
मार खाया हुआ चमड़ा
राम सिंह के जूतों में
लगते हैं रंभाते—बैल ।

[सिंजौली, शिमला-6]
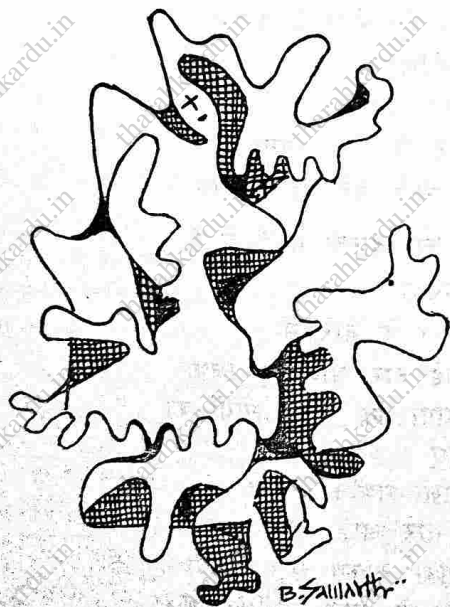
किन्नर एवं गन्धर्व देश का संगीत

☐ रामदयाल 'नीरज'

उत्तर प्रदेश के कुमाऊं और गढ़वाल जनपद तथा हिमाचल प्रदेश का पर्वतीय भूखण्ड किन्नर और गन्धर्वों का देश कहा जाता है। यहां के मानव ने संगीत का बहुत कुछ रूप प्रकृति से लिया है। यह वह धरा है जहां समूची प्रकृति "लास्य" से "ताण्डव" तक के सभी मूड दिखलाती है। जहां अति 'मद्र' से लेकर अति "तार" सप्तक तक के सभी स्वर गूंजते हैं, झरने संगीत छेड़ते हैं और पत्ते तालियां बजाते हैं। संगीत और नृत्य इन पार्वत्यों का जीवन है। इनकी मादकता और मस्ती है।

श्रम-साध्य जीवन का नृत्य और संगीत से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रहा है। व्यक्तिगत श्रम-शक्ति को सामूहिक रूप में एक केन्द्रबिन्दु पर लाने के लिए युगों से संगीत की लय इस धरती पर बरदान सिद्ध होती रही है। यह सामूहिक लय चाहे "हश्या हो" की सामूहिक गुहार में हो अथवा "हुम्बे" की पुकार में, 'हश्शे' के प्रयास में हो या "शाब्बाशे" के विश्वास में। स्वर-साधन ही संगीत का लक्ष्य है, किन्तु यहां के इन्सान ने इस लक्ष्य को उसी समय समझ-बूझ लिया था, जब उसने एक गांव से दूर किसी दूसरे गांव तक कोई सन्देश पहुंचाने के लिए 'धाह' (आवाज़) लगाना सीखा था। यह आवाज़ या धाह एक ही स्वर पर देर तक टिक कर आज भी दी जाती है, जो स्वर साधन का जन-साधारण के लिए उपयोगी होने का प्रमाण बन गई है। अपने संदेश के संक्षिप्त शब्द इसी 'धाह' के माध्यम से पहुंचाये जाते हैं। इसमें संप्रेषण की शक्ति और सुनने की एकाग्रता सुनने और देखने योग्य होती है।

आज के युग में ही नहीं, अपितु वैदिक काल से भी संगीत के दो पक्ष हो चुके थे। एक पक्ष था लोकोन्मुखी और दूसरा था शास्त्रोन्मुखी। ऋग्वेद की ऋचाएं 'गीति' के लिए 'सामगान' के रूप में परिवर्तित हुई, गाने की पद्धति निर्मित हुई तथा प्रत्येक ऋचा के लिए 'षड़ज' से 'निषाद' तक केन्द्रीय स्वर निश्चित किये गये। जिस समय संगीत का यह शास्त्रोन्मुख पक्ष अग्रसर था, उसी समय लोक-पक्ष को बनाये रखने के लिये गांव-गांव गवय्यै-बजय्यै (ऋग्वेद, १/२८/५, ६/४७/२६) चलते थे तथा 'गाथा-पति' 'गाथिन' के दलों के साथ (ऋग्वेद, १/७/११, १/४३/४) घूमते थे।

यह समूचा पहाड़ी क्षेत्र सहज ही संगीत के लोक-पक्ष को अपने भीतर अब तक सहेजे और समोये हुये है, इसीलिए इसे गन्धर्वों और किन्नरों की धरती कहा गया है। तब से आज तक ये दोनों पक्ष अपने-अपने इतिहास को साथ लिये समानान्तर आगे बढ़ते चले आये हैं। इतिहास दोनों पक्षों का है, किन्तु एक का इतिहास लिखित है और दूसरे का अलिखित। एक का इतिहास पुस्तकों में खोजा जा सकता है और दूसरे का अपनी लोक-धुनों में और लोक-गीतों की शैलियों में, जो इस गन्धर्व देश के 'गाथिनों' के कण्ठों से फूटती रही हैं। कौन अन्वेषण करेगा संगीत के लोक पक्ष का जिसने शास्त्रीय संगीत को जन्म दिया? यह एक प्रश्न है—मात्र प्रश्न। यह कितनी विपरीत धारणा है कि अमुक लोक-गीत की लोक-धुन का आधार अमुक राग है। क्या यह लोक-धुनें आधुनिक रागों की आधार नहीं हो सकतीं? क्या 'शास्त्र' ने 'लोक' से पहले जन्म ले लिया था? संगीत निपुण ऋषि मातंग (४०० ई.) में अपनी प्रसिद्ध रचना 'बृहद्देशी' में यह दर्शाया है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत पर आदिवासियों के संगीत का प्रभाव है। इन आदिवासियों में उन्होंने पुलिन्द, कंबोज, वंग, किरात आदि के नाम लिये हैं। वास्तव में आज भी रागों के नामों में उनके उद्गम-स्रोत स्वरूप क्षेत्र के नाम सुरक्षित हैं। जैसे शक, भोटी, अहीरी, गुर्जरी, पहाड़ी आदि। महर्षि मातंग ने अपनी रचना में ऐसे ग्यारह रागों का नाम लिया है जिनका नाम कबीलों और क्षेत्रों के नाम पर रखा गया है।

प्रसिद्ध संगीत विशेषज्ञ अलेन डेनेलो का कथन है कि "भाषा के रूपों के समान संगीत के रूपों में भी क्षेत्रीय तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। यदि लोक संगीत में विकृति न उत्पन्न की जाये अथवा उसकी शैली को न छेड़ा जाये तो संगीत में विभिन्न जातियों, क्षेत्रों और युगों के प्रभावों को पहचानना उतना ही सहज होगा जितना कि भाषा-विज्ञ को भाषा में प्रभाव पहचानना सहज होता है।" लोक संगीत के यही सुरक्षित-रूप और शैलियां इसका इतिहास बनाते हैं,

जिन्हें खोजना विशेषज्ञों और अन्वेषकों का कार्य है । अभी तक पहाड़ी लोक-धुनें अथवा पहाड़ी संगीत पर अन्वेषण तो अलग बात है, किन्तु इस ओर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया । युगों से चलती आयी रीति के समान 'लोक' आज भी कला के सभी क्षेत्रों में अन्वेषण के लिए उपेक्षित है ।

गन्धर्व देश के इस पहाड़ी लोक-संगीत की प्रमुख विशेषताएं यहां प्रस्तुत हैं

पहली विशेषता है लोक-धुनों की सादगी—जिसमें न कोई उलझाव है और न कोई तनाव । केवल एक गतिमयता है, जो किसी अचानक झटके और टूटने वाले ठहराव के बिना नहर के पानी की तरह निर्बाध बहती है । धुनों की यह निरन्तर गतिमयता पहाड़ी जीवन से भी मेल खाती है ।

दूसरी विशेषता है—लोक-धुनों में 'स्थाई' का महत्व । लोक-गीत के सभी पदों या कड़ियों को प्रायः 'स्थाई' के रूप में ही माना और गाया जाता है । इसमें न कोई "अन्तरा" होता है और न ही अन्तरे की उड़ान । यह इन लोक-धुनों का मूल संगीतात्मक सिद्धान्त है, जो इन दिनों बाहरी प्रभाव से बदलता जा रहा है ।

तीसरी विशेषता यह है कि लोक-धुनें 'औड़व' "षाड़व" और "सम्पूर्ण" के बन्धन से बाहर होती हैं । भारतीय रागों का यह संगीत-शास्त्रीय पक्ष इनमें नहीं है । पहाड़ी लोक-धुनों में कई बार तो केवल तीन ही स्वर लगते देखे गये हैं । इन धुनों को सुनकर ऐसा लगता है कि जैसे ये "अमुक-अमुक" रागों पर आधारित हैं, किन्तु इन रागों के पूर्ण लक्षण उन धुनों में परिलक्षित नहीं होते। ये धुनें ही ऐसा कच्चा माल हैं, जिनसे भारतीस रागों का निर्माण हुआ होगा ।

चौथी विशेषता है—यहां की धुनों का ताल-सहित और ताल-रहित दोनों रूपों का होना । सुनसान घने बनों के एकांत को तोड़ते हुए जब सवाल-जवाब के रूप में दो भिन्न-भिन्न स्वर उभरते हैं, तो जंगल की डाली-डाली झूम उठती है । यह स्वर बिना किसी ताल के लम्बी गूंजने वाली लयों में उभरते हैं और देर तक वातावरण में तैरते रहते हैं । हिमाचल प्रदेश में ऐसी धुनों को इसलिये ही "लामण" कहा जाता है । इनमें सम्प्रेषणीयता का अद्भुत गुण है । वैसे, अधिकतर यहां के सांस्कृतिक-गीतों की धुनें भी ताल-रहित हैं ।

ताल-सहित लोक-धुनों की तालें सीधी-साधी और गति प्रधान हैं । यद्यपि इन लोक-तालों के अपने बोल हैं किन्तु इनकी बन्दिश चार, छः, सात और आठ मात्राओं की लय-तालों में होती है। ये धुनें विलंबित, मध्य और द्रुत तीनों लयों

में गायी जाती हैं। वास्तव में तालयुक्त लोक-धुनों के लोक-गीत लोक-नृत्य की अपेक्षा रखते हैं, वे नृत्य चाहे एकल हों अथवा सामूहिक। लोक-धुनों की लहरीली चाल क़दमों को तालमय बनाने के किये किसी को भी मजबूर करने में समर्थ होती है।

पांचवी विशेषता है—लोक धुनों का प्रायः सामूहिक-गान के लिए निर्माण। पार्वत्य क्षेत्र के लोग सामूहिक कार्यों में विश्वास रखते हैं जो कि इनके सामाजिक ढांचे के लिए उपयुक्त है। ग़मी और खुशी में यदि शामिल होने की भावना प्रबल रूप से इन पार्वत्यों में न हो तो इनके जटिल जीवन में सुगमता कहां? यहां का संगीत ग़मी और खुशी में बराबर शामिल है। इसलिए उसका सामूहिक रूप में अधिक उभरना स्वाभाविक ही है। गन्धर्व और किन्नर धर्मी इन पहाड़ों के लोक-संगीत का इतिहास यहां की सामूहिक धुनों में ही छिपा है। एकल धुनें साधारणतः कुछेक दक्ष गायक ही गाते हैं। वैसे भी इन धुनों के आधार-गीत किसी प्रकार का इतिहास न होकर कोई घटना विशेष होते हैं, जो समय के साथ ही ढलते, बदलते और चलते हैं। दूसरी सामूहिक धुनों के आधार गीत-संगीत और इतिहास दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। इसलिए इन में "गाथा-गीत" दोनों ही दृष्टियों से विशेष महत्व के हैं। ऐसे गीतों में हारे या हासल झेड़े, रमौल, मालूशाही के नाम लिये जा सकते है। उत्तराखण्ड की संगीतमय धरती की यह थाती ही भारतीय संगीत गाथिन-समाज का इतिहास है।

छटी विशेषता यह है कि यहां की धुनों को स्वर-वाद्यों की विशेष आवश्यकता नहीं होती। केवल ताल-वाद्यों का ही प्रयोग अधिक होता है। मुरली अथवा नफीरी (छोटी शहनाई) का प्रयोग नृत्य-गीतों में होता है, किन्तु संगत के ध्येय से, ताकि नर्तकों को समय और दम (विश्रांति) मिल पाये। यहां के गायक सामूहिक गीत प्रारम्भ करने से पहले षड़ज् साधते हैं और फिर उसी सधे हुए आधार-स्वर पर गीत की कड़ियां गाते चले जाते हैं। वे सामूहिक गायक इस षडज् को इतनी सुन्दरता से थामे रहते हैं कि श्रोता को स्वर-वाद्य की अनुपस्थिति का आभास तक नहीं हो पाता। सामूहिक गीतों में एक दो व्यक्ति मूल-गीत को गाने वाले होते हैं और शेष गीत की कड़ियों को दोहराने वाली धुनों को दोहराने वाले गायक। सिद्धांत यह है कि मूल-गायक द्वारा गाई गयी कड़ी को, उसके समाप्त होने के पूर्व ही दो मात्रा पहले पकड़ लेते हैं तथा यह तारतम्य टूटता नहीं—षडज् का स्वर निरन्तर बना रहता है "तानपूरे" के समान।

गायकों द्वारा षडज साधते समय यह एक विशेष बात देखी गई है कि वे लोग अपना गीत प्रारम्भ करने से पूर्व या तो "मद्र निषाद" से 'षडज्' पर आयेंगे या फिर "रिषभ" से "षडज्" पर आकर टिकेंगे। अर्थात एक प्रकार से पूर्व-स्वर (अवरोही) को साथ मिला कर "मींड़" का प्रयोग करते है।

गायन और नृत्य में स्त्री और पुरुष दोनों वर्गो को समान अधिकार है। यह किसी एक निश्चित वर्ग का ही अधिकार नहीं है। हर्ष और उल्लास की किसी भी स्थिति में दोनों वर्गों को सम्मिलित होने की छूट है। इस गर्न्धव देश में इसके लिए कोई सामाजिक बंधन नहीं है। और फिर संगीत तो यहां का जीवन है, उससे वंचित रहकर यहां का प्राणी पत्थर क्यों बने ?

एक अनूठी विशेषता यह भी है कि बिना किसी स्वर-वाद्य की सहायता के यहां के कुछ लोक-गायक "षड़ज्-गांधार" "षड़ज्-मध्यम" तथा "षड़ज्-पंचम" संयोजक का प्रयोग सहज में ही कर लेते हैं। यह प्रक्रिया कितनी कठिन है यह कोई संगीतज्ञ ही समझ सकता है। पुरुष यदि षड़ज् में लोक-गीत का उठान करते हैं तो स्त्रियां उसी गीत की उसी कड़ी को दोहराते समय दो मात्रा पूर्व ही गांधार, मध्यम अथवा पंचम में उठाती हैं। इस प्रकार के स्वर-संयोजनों का प्रयोग प्रायः विदेशी संगीत में पाया जाता है, किन्तु भारतीय संगीत में नहीं। अन्तर इतना है कि विदेशी संगीत में यह स्वर-संयोजन गायकों अथवा साजों के माध्यम से एक साथ होता है और पहाड़ी संगीत में यह बिना किसी साज के या उस की संगत के अलग-अलग होता है। यह अनूठा मेल या संयोजन किसी भी संगीतकार के लिए एक चौंकने वाला करिश्मा है। इस पर्वतीय क्षेत्र के संगीत को यहां तीन मूल्य भागों में बांटा गया है—पहला भाग वाद्य-संगीत का, जिसमें पहाड़ी साज़ों पर केवल धुनें ही रसोद्रेक बजाई जाती हैं। दूसरा भाग है बाज-संगीत का, जिसमें केवल रसोद्रेक के ध्येय से वाद्य-यंत्रों पर कुछ निश्चित लोक-तालों का वादन किया जाता है, और तीसरा भाग है गीति-संगीत का, जिसमें सामूहिक और एकल दोनों प्रकार की गान-विधाएं और शैलियां प्रचलित हैं।

वाद्य-संगीत में तालयुक्त और ताल-मुक्त दोनों प्रकार की धुनें बनाई जाती हैं। चौमासे में मुरली छेड़ी गई धुनें ताल-मुक्त होती हैं। ये धुनें खुली लम्बी तान वाली, सवेदनशील और सम्मोहक होती हैं। वातावरण को संगीतमय बना देने वाली इन धुनों को सुनकर चलता राही बरबस ही रुक जाता है। ऐसी ताल-युक्त धुनों में नफीरी (छोटी शहनाई) पर शास्त्रीय रागों पर आधारित धुनें

बजाई जाती हैं, जिन्हें "नौबत" की विशेष लोक-शास्त्रीय तालों पर बजाया जाता है। नौबत का प्रचलन इस पहाड़ी क्षेत्र में सामन्तशाही युग की देन है। क्योंकि नौबत के लिए नौ विशेष तालों का सृजन यहां के लोक-कलाकारों द्वारा हुआ है, इसलिए इन्हें यहां लोक-शास्त्रीय ताल के नाम से जानना उपयुक्त होगा। इन तालों को नगारे पर बजाया जाता है, जो यहां की आम जनता का ताल-वाद्य नहीं है।

जन-समूह में सामूहिक-श्रम के लिए जोश भरने या रौद्र, वीर, करुण आदि रस जागृत करने के लिए विभिन्न वाद्य-यन्त्रों पर विभिन्न तालें बजाई जाती हैं। इन विभिन्न प्रकार के बाजों अथवा तालों को विशेष अवसरों पर ही बजाया जाता है। मृत्यु पर, शादी पर, खेती बाड़ी में सामूहिक कार्यों पर, खेल-कूद आदि में ये बाज बजते हैं, जिन की एक खास पहचान है। इस प्रकार के बाज सुनते ही दूर गांवों में बैठे यहां के लोग यह पहचान लेते हैं कि जहां यह बाज या ताल बज रही है, वहां किस स्थिति में क्या कार्य हो रहा है। इस के लिए इस गंधर्व देश के वासियों के संगीत पारखी कान पूरी तरह अभ्यस्त होते हैं। बाज-संगीत में केवल मात्र ताल-वाद्यों, जैसे—नगारा, ढोलक, दमुआ या दमामटूं, हुड़क अथवा हुड़का, थाली आदि का प्रयोग किया जाता है। रणसिहा और करनाल (तुरही) जैसे सीमित स्वर वाले वाद्यों का प्रयोग बाज-संगीत में प्रायः देव आह्वान के समय अथवा देवता को पालकी पर उठा कर कहीं ले जाते समय किया जाता है। इन दिनों मेले-ठेलों में नर्तक-दलों के साथ भी ये बाज बजते हैं।

इस भूखण्ड के संगीत का अनुशीलन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस समय यहां 'शास्त्रीय' "लोक-शास्त्रीय" तथा "लोक" नाम से तीन मुख्य संगीत शैलियों का प्रचलन है। शास्त्रीय शैली का प्रयोग तो केवल वे ही लोग करते रहे हैं, जो राज-दरबारों में आश्रय-अधीन रहकर और किसी गुणी उस्ताद से राग-विद्या सीखते हैं। ये लोग लोक-संगीत को तुच्छ दृष्टि से देखते रहे हैं।

लोक-शास्त्रीय शैली में ऐसा संगीत आता है, जिसमें शास्त्रीय, रागों पर आधारित शास्त्रीय और सुगम पद्धति दोनों का मिला-जुला प्रयोग करके गायन तो किया जाता है, किन्तु ताल-वाद्य में संगत के लिए ढोल बजाया जाता है। ढोल पर बजने वाली तालें "लोक-शास्त्रीय" रंगत की होती हैं, जिन्हें इस क्षेत्र के लोक-कलाकारों ने स्वयं ही निर्मित किया होता है। इन तालों की लय

और गति में इस पहाड़ी क्षेत्र की स्पष्ट छाप होती है। ये तालें छः मात्रा से लेकर अठाईस मात्राओं तक की सुनने में आती हैं। इस शैली में हिन्दी और पहाड़ी दोनों भाषाओं में से किसी भी भाषा की रचना का गायन किया जाता है। इस शैली में एकल गायन होता है, सामूहिक नहीं।

जन-साधारण में आम घरों के भीतर ताल-वाद्यों में से "खंजरी" के अतिरिक्त किसी भी वाद्य का प्रयोग होते नहीं देखा गया। कहीं-कहीं खंजरी के साथ घड़ा भी बजता देखा गया है। ताल-वाद्यों को बजाने वाले वर्ग को यहां सामान्यतः ठाकरी, बेड़ो, बाजघी वाघी (आवजी हुड़क्या, ढोली) बंजतरी, तूरी, हेसी आदि विभिन्न नामों से बुलाया जाता रहा है। ये लोग संगीत विद्या में पारंगत होते थे। इसी विद्या के सहारे इनकी जीविका का निर्वाह होता रहा है। ये ही वे कलाकार हैं जिन्होंने इन पहाड़ों को विभिन्न प्रकार की लोक-तालें और लोक-शास्त्रीय तालें दीं। अपनी अनूठी स्मरण शक्ति के सहारे गाथा-गीतों, लोक-गीतों तथा लोक-धुनों को जहां इन्होंने एक ओर सुरक्षित रखा वहां दूसरी ओर नवीन सृजन का कार्य भी किया। इस गंधर्व देश के लोक-संगीत का खजाना इन्हीं विद्याधारों की स्मरण-शक्ति के नीचे दबा है, जिसे उकेरा जाये तो संगीत शास्त्र का इतिहास पूरा हो जाये। अन्यथा 'नाद' से 'राग' तक के सफर में कोई पड़ाव ही नहीं दिखाई देता।

पहाड़ी देश के वाद्य यंत्रों में चारों वर्गों—घन, अवनद्ध, सुषिर और तत् वाद्यों का प्रचलन है और इन्हें ऊपरलिखित वर्ग के ही विशेष कलाकार बजाते हैं। कभी कभार ही सर्व साधारण में से कोई व्यक्ति इन वाद्यों को बजाता दिखाई देता है। अनेक वाद्यों में से जिन लोक वाद्यों का अधिक प्रयोग होता है वे हैं—घन-वाद्यों में—भाणां (कांसे की थाली) और झांझ, अवनद्ध-वाद्यों में ढोलक, दमामट्ट, हुड़क, घड़ा, और खंजरी। सुषिर-वाद्यों में—मुरली, रण सिंघा, करनाल और नफीरी (छोटी शहनाई) तथा तत्-वाद्यों से—ग्राम्यां और एकतारा।

गन्धर्वों और किन्नरों के इस देश में स्वर-वाद्यों की अपेक्षा ताल-वाद्यों की प्रधानता और अधिकता पाई जाती है। स्वर-वाद्यों में बांसुरी और शहनाई के अतिरिक्त कोई ऐसा पुराना वाद्य नहीं, जो किसी गायक की उसके गायन में पूरी तरह संगत कर सके। बांसुरी और शहनाई के ऐसे वादक है ही नहीं जो प्रत्येक छिद्र को षडज् मानकर पूर्ण गीत बजा सके। इन दो वाद्यों में से सिद्ध हस्त वादक इसी प्रदेश में ही नहीं, अपितु सारे देश में भी नहीं है। अतः निश्चित षडज् होने के कारण कभी-कभार गाने वाले में और बजाने वालों में अथवा संगीत में स्वर समता

श्रौर संगत नहीं बैठ पाती। गाने वाले किसी श्रौर स्वर से गा रहे होते हैं श्रौर बजाने वाले किसी श्रन्य स्वर में गा रहे होते हैं। वास्तव में लोक गायकों का गाने वाला समूह स्वर-वाद्यों की श्रोर प्राय: ध्यान ही नहीं देता। वह श्रपने स्वर से बराबर बिना हिचके गाये चला जाता है। वास्तव में यहां का लोक गायक स्वतन्त्र गायक है। वह संगत केवल गायक की ही चाहता है, किसी वाद्य की नहीं। न ही उसे इसका श्रभ्यास होता है। इस पहाड़ी क्षेत्र में ताल-वाद्यों की क्योंकि श्रधिकता है, श्रत: विभिन्न मात्राश्रों की विभिन्न लोक श्रौर लोक-शास्त्रीय तालें भी यहां विभिन्न हैं। ⊙

[प्रैस रूम, दि माल, शिमला-१७१ ००१]

लघु कथा

एक-विद्रोही-बकरा

एक-विद्रोही-बकरा ईद के दिन मैं-मैं कर रहा था ! बकरे की मां समझ गई थी कि ... श्रब खैर नहीं है। उसने एक बार श्रपने जवान बेटे को भरपूर नज़र से देखा श्रौर फिर चाँद को देखकर थूकने लगी।

पाठकों से

☐ विपाशा में प्रकाशित रचनाश्रों पर पाठकों की प्रतिक्रिया एवम् रचनात्मक सुझावों की श्रपेक्षा रहेगी। स्वस्थ प्रतिक्रियाश्रों को लेखक-पाठक संवाद के लिए 'पाठकीय' के श्रन्तर्गत प्रकाशित किया जायेगा।

☐ वार्षिक शुल्क मनिश्रार्डर द्वारा भेजकर श्रथवा नकद जमा कराकर श्राप इसके नियमित ग्राहक बन सकते हैं। विभाग के शिमला स्थित निदेशालय के श्रतिरिक्त मालरोड की पुस्तक की कुछ दुकानों तथा प्रदेश के सभी ज़िला भाषा श्रधिकारियों के कार्यालयों से भी पत्रिका प्राप्त की जा सकती है।

समीक्षा

कथानामा : छोटी-कथाओं की बड़ी किताब

□ कृष्णकांत दुबे

छोटी कथाओं की एक बड़ी किताब "कथानामा"। लघुकथा पर केन्द्रित एक स्वागत योग्य आयोजन है। इन्हीं दिनों हर नई किताब का फ्लैप—नई से नई घोषणा लिए रहता है। इसमें भी घोषणा है—"सन् १९७० से आधुनिक लघु-कथा का रूप स्पष्ट होकर, उसकी एक अलग पहचान उभरने लगी। इसके पूर्व प्रकाशित लघुकथाएं, उपेक्षित प्राय: रहीं। वे न तो पाठकों का ही विशेष ध्यान आकर्षित कर पायीं और न ही कोई विशिष्ट स्थान बना सकीं।"

इसमें "आधुनिक-लघुकथा" शब्द, बहुत ईमानदार शब्द है और हमें अपनी सही पहचान देता है। वरना लघुकथाओं की परम्परा, न जाने कब से चली आ रही है। इसका मौखिक और लिखित रूप, मानवी-अभिव्यक्ति के प्रारम्भ से, उसके साथ है। आदिम मानव के शैलगुहा-चित्र भी, उसके लिखित पृष्ठ हैं। भारत की लघुकथाएं सात समन्दर पार बखानी गई। वे उपनिषदीय हों या पुराणगाथाएं, जातक, वृहद्कथासरित सागर, गाथासप्तशती, हितोपदेश की हों या पंचतन्त्र की, अकबर-बीरबल की हों, या तैनाली राम की—सबकी अपनी पहचान है। वे आज भी हमें कुछ कहती हैं तो अच्छा लगता है।

यह अच्छा लगना ही लघुकथाओं की शक्ति और सही पहचान है। भूल नहीं—यह पहचान हमें नानी-दादी से मिलाती है और वह हमें संस्कारित करती है। लोक जीवन में जो पग-पग लघुकथाएं हैं वे तो उसकी दीपिकाएं हैं। सन्त-महात्माओं, कथाकारों-प्रवचनकारों ने भी इन्हें अपना आश्रय बनाया है। ग्राम-कथकक्कड़ अपने समाज का सम्मानीय-व्यक्ति होता है। लघुकथाओं का अस्तित्व, उनकी पहचान और सामाजिक-जीवन में उनका विशिष्ट स्थान,पुरातन से आज तक है।

कथानामा के पहले कथाका पृथ्वीराज अरोड़ा की कथाओं में "भूल" सर्वोत्तम और गठी हुई कथा है। निम्न और निम्न मध्मवर्गीय विवशता और विद्रोह 'धूल धुंआ' 'आवश्यकता' 'प्रभुकृपा' और 'दया' जैसी इनकी कथाओं का विषय है।

बलराम, आधुनिक-लघुकथा के साथ जुड़े प्रतिबद्ध कथाकार हैं। वे अपनी कथायात्रा में— जिब्रान-बोध का पाथेय लिए चलते हैं— पर कहीं-कहीं 'आदमी', 'मशाल और मशाल', 'पाप और प्रायश्चित' कथाएं इसी बोध का आधुनिक रूपान्तर हैं। 'मृगजल' समाप्त होती मानवीय संवेदनाओं और आज के उभरते स्वार्थों का बेबाक-विवरण है। उनकी सबसे सशक्त लघुकथा है 'अपने लोग'। भगीरथ— इस कथा-संग्रह में बड़ी लघुकथाओं के लेखक के रूप में सामने आते हैं। वे संक्षिप्त होती तो निश्चित रूप से सशक्त और बेजोड़ होती। उनकी कथाओं में लोककथा और बोधकथा दोनों झलकती हैं।

मनोषराय आधुनिक बोध के सबसे सशक्त लघुकथाकार हैं। कथानामा में संगृहित उनकी हर कथा लघुकथा का सही प्रतिमान है। वे पूरी सतर्कता से इसी प्रतिमान को ठीक-ठीक रूपाकार दे रहे हैं। आज देश और तंत्र के बीच जो कुछ घट रहा है मनीषराय ने उसे सीधा कहा है। लघुकथा के सही प्रतिमान की कथायें, मधुदीप के पास भी हैं, लेकिन संक्षिप्त कहने की उनकी विवशता में वे अपना अर्थ खो देती हैं। उनका तरल-भावावेग भी उन्हें खतरे में डालता है। सामाजिक-असमानता और वर्गभेद को वे कहते जरूर हैं पर पूरी शक्ति से नहीं।

इस संग्रह की एकमात्र महिला कथाकार है मालती महावर। वे जिब्रान बोध की कायल हैं। उभरता नारी संवेग भी उनकी कथाओं को तीखा नहीं बना पाया। वे अपनी कथाओं के माध्यम से अपने मन का चमत्कार ही परोस पाई हैं। लघुकथा, दार्शनिक-फेंटेसी नहीं है, पर रमेश बतरा की कथाएं यही हैं। "खोया आदमी' और "नागरिक" में रमेश बतरा इसे ही जीते हैं। जब उनकी अन्य कथाएं उस जगह से हटती हैं जैसे "लड़ाई", "नौकरी", "दुआ" और "बीच बाज़ार" और वे जिस भी समस्या को उजागर करती हैं उनमें भी फेंटेसी का स्वाद आता है। "बात पुरानी : कहानी नई" का आवेग राजकुमार

गौतम में है । इसके साथ वे राजनीति को भी लिखते हैं । डा. सतीश दुबे व्यंग , मध्यवर्गीय एहसास और ग्रामरू जीवन की सही निकटता के लघुकथाकार हैं । सतीश दुबे अपनी कथाओं में भाषा के साथ पूरी ईमानदारी बरतते हैं ।

'स्वागतम्' के कमल चोपड़ा जो कुछ कहते हैं आज का कहते हैं । बहुत तेज़ कान हैं उनके पास । पर वे पूरी शक्ति से कह नहीं पाते । कमल चोपड़ा से मेरा एक प्रश्न है क्या गरीब व्यक्ति इन्सानियत को इस कदर खो चुका है जैसा वे लिखते हैं ?

आधुनिक असंगतियों के कथावर हैं गुलशन बालानी । वे उन्हें अपनी ही दृष्टि से देखते हैं । विक्रम सोनी के पास, अपने विस्तृत अनुभव हैं । पर वे अपनी अंतररची स्थितियों पर कथाएं रचते हैं । पाठक भौंचक रह जाता है। क्या ऐसा भी होता है ? तीखापन और शिल्प, विक्रम की विशेषता है ।

श्रीनिवास जोशी प्रारम्भ करते हैं— पुरानी बोधकथा को नया संदर्भ देने से । वे अन्य कथाओं में आज को समझ देते हैं । पर प्रारंभ का प्रभाव नहीं मिटा पाते । नौकरशाही के करिश्मों-शतरंजी-मोहरों की तरह इस्तेमाल कर वे उनकी चाल उजागर करते हैं । वे सामाजिक विसंगतियों को भी धूपघड़ी की तरह ही सही नापते हैं । श्रीराम मीना ने पुरानी कहन को नया रूप देने और आज को लोककथा शैली में कहने का साहस जुटाया है ।

पुस्तक के अन्त में विचारपक्ष के तीन आलेख हैं— जिनमें जगदीश कश्यप वसंत निरगुणे और बलराम ने आधुनिक लघुकथा के सही प्रतिमान को स्थापित करने और आकलन करने की कोशिश की है ।

पुस्तक :
कथानामा (लघुकथाएं) सं. मनीष राय बलराम; पराग प्रकाशन, ३/११४ कर्णगली विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली-३२

आगामी 'कहानी अंक' में सर्वश्री सुन्दर लोहिया, धीरेन्द्र अस्थाना, सुदर्शन वशिष्ठ, सुशील कुमार फुल्ल, यशवीर धर्माणी, प्रेम भारद्वाज तथा दिनेश धर्मपाल की 'विपाशा कथा शिविर' में पढ़ी गयी कहानियों के साथ रतन सिंह हिमेश, जिया सिद्दीकी तथा दीपा त्यागी की कहानियों को मिलाकर एक साथ दस कहानियां ।

मृत्यु लोक की मित्रता

□ वि. स. खाण्डेकर

स्वर्गलोक में हरकोई जानता था कि दो बदन होकर भी उनका दिल एक है। उनकी आत्माओं को कभी अपने-बेगाने की भावना का स्पर्श नहीं हुआ था, फिर भले अमृत प्राशन करना हो, कल्पवृक्ष की छाया में भोजन हो या हर-सिंगार के फूल बटोर कर उन्हें अप्सराओं को समर्पित करना हो।

उनकी पुण्यप्राप्ति एक साथ खत्म हुई। और उन्हें मृत्युलोक में भेजने का निश्चय हुआ। तब उन्होंने इंद्र से निवेदन किया, 'हे दयानिधान, तुम हमें किसी भी चोले में भेज दो पर हमें साथ रखो।' एक दूसरे के निकट सम्पर्क में रहने पर मृत्युलोक में भी हम स्वर्गसुख का अनुभव करेंगे।

इन्द्र ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

उन दोनों को जंगली पेड़ का जन्म मिला। दोनों एक दूसरे से सट कर तन गये। पर एक ऊँचा उठा, उसकी टहनियाँ सर्वत्र फैल गई, तो दूसरा बौना ही रहा। उस बौने वृक्ष को नित्य उजाले की चाह रहती। वह गिड़गिड़ता कहता 'भाई, तुम अपनी इन विशाल टहनियों को जरा समेट लो। मुझे थोड़ी खुली धूप तो मिलने दो।'

बड़े वृक्ष की टहनियाँ उपहास करती मात्र हिलती-झूमती रहती। उन्होंने बौने को कभी खुली धूप मिलने नहीं दी।

छाया में पला वह बौना पेड़ जल्द मुरझाकर मर गया।

ईश्वर ने बौने वृक्ष की आत्मा से प्रश्न किया, 'अब तुम कौन सा जन्म चाहोगे?'

एक आत्मा में खलबली मची। उसने खूब सोचा। अन्त में स्वर्गलोक की अपनी मित्रता का स्मरण कर उसने बताया "मेरे मित्र की आत्मा जहाँ जाना चाहेगी, मैं वहीं जाना पसंद करूँगा।"

फिर दोनों आत्माओं को हिरन का जन्म मिला। जंगल में घास-पानी की कोई कमी नहीं थी। स्वर्गसुख और क्या होता है? दोनों खा-पीकर, नाचते—मचलते रहते। पर एक दिन दोनों में हुई अनबन का नतीजा खून-खराबे तक पहुँचा। बात मामूली थी। दोनों जानना चाहते थे कि किसके सींग सुंदर हैं।

दोनों प्रौढ़ हुए। एक दिन वन की एक हिरनी को लेकर दोनों में विवाद हुआ। दोनों के लिए वह हिरनी तिलोत्तमा से कम न थी। सब डर गये थे कि कहीं सुन्दोपसुन्द का इतिहास दोहराया न जाए।

पर विवाद के प्रसंग अपवाद से ही आते।

एक दिन वन में शिकारी घुस आये। वन के सारे प्राणी जान की बाजी लगा कर भागने लगे। ये दोनों भी साथ-साथ भागते रहे। उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि जोखिम की घड़ी में भी वे एक दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगे।

पता नहीं वह शिकारी कहाँ से इनकी ओर आया। एक हिरन ने उसे देखा। देखते ही वह धराशायी हुआ। दूसरे ने सोचा— मित्र तो चल बसा, अब उसकी खबर लेना बेकार है। दूसरे ही क्षण भागनेवाले उस हिरन के शरीर में तीर चुभ गया। धराशायी हिरन उठकर उल्टे पाँव दौड़ने लगा।

शिकार हुए हिरन की आत्मा से ईश्वर ने पूछा, 'कौन-सा जन्म चाहते हो अब ?' स्वर्गलोक की मित्रता उसे याद आयी। पीछे घसीटने वाली आत्मा को झकझोर कर उसने उत्तर दिया, "दूसरी आत्मा को आने दो। फिर हम दोनों को एक ही स्थान पर, एक ही जन्म दो।'

जूड़वा भाइयों के रूप में आत्माओं ने एक राजघराने में जन्म लिया। बचपन में उनके ऐश्वर्य में राई का भी फरक नही था। दोनो को लगा, स्वर्गलोक की तरह यहाँ मृत्युलोक में उनकी मित्रता अटूट रहेगी।

राजपुत्र प्रौढ़ हुए। राजपुत्र का दायित्व सौंपने का विवाद आरम्भ हुआ। धर्म पण्डित, राजा-प्रजा, सब की राय अलग-अलग थी। और प्रजा की राय की परवाह भी कौन करता ?

सेनापति की रूपवती कन्या नित्य राजमहल आती रहती। दोनों राजपुत्र उस पर फिदा थे। दोनों को विश्वसनीय सूत्रों से पता चला कि जो राजा होगा, उसी को वह वरमाला पहनाएगी।

एक दिन दोनों राजकुमार शिकार के हेतु वन गये। राजमहल छोड़ते समय दोनों की आंखों में खून उतर आया था। दोनों ने एक दूसरे से कहा, 'आज का शिकार खास रहेगा।'

शाम के समय दोनों के शव राजमहल लाये गये। बताया गया कि झाड़ी के पीछे किसी हिरन पशु को जानकर दोनों ने तीर छोड़े। और दोनों का निशाना ठीक निकला।

ईश्वर ने दोनों की आत्मा से पूछा, 'अब कौन-सा जन्म चाहोगे?'

दोनों एक साथ बोले, 'कोई भी। पर एक दूसरे से दूर। बहुत दूर।' ⊙

अनुवाद : डॉ. सुनील कुमार लवटे
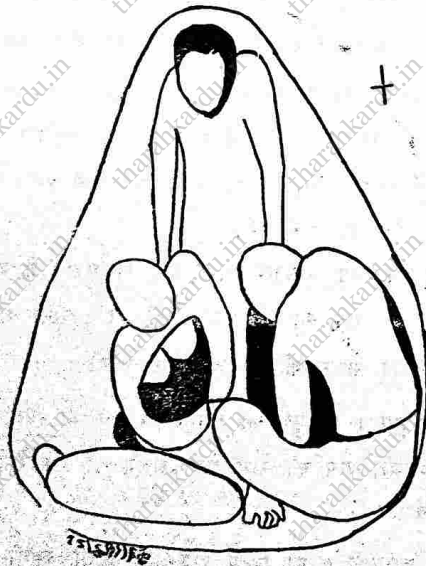
पहाड़ी लघुचित्रों में श्रीकृष्ण का स्वरूप

□ डॉ० राम स्वरूप

पहाड़ी चित्रकला ने वैष्णव साहित्य की मृदुलतम भावनाओं को साकार किया है जिसमें भक्ति शृंगार और वात्सल्य तीनों रसों की त्रिवेणी बहती हुई दिखाई पड़ती है। इस मधुरतम प्रवाह का उद्गम श्रीकृष्ण चरित्रांकन है जो मानवीय भावनाओं के बहुत ही निकट और अनुरूप है। राधिका की रूप माधुरी पहाड़ी चित्रकारों का केन्द्र बिन्दु है, श्रीकृष्ण के किशोर रूप में लय हो जाना इनका उद्देश्य है। चित्रण की सभी अवस्थाओं में श्रीकृष्ण ही उनकी कल्पना के नायक हैं।

कृष्ण-भक्ति के उद्भव का निश्चित समय तो ज्ञात नहीं किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि महाभारत के युग में श्रीकृष्ण को अवतार रूप में स्वीकारा गया। भगवान के अवतार श्रीकृष्ण के माधुर्य स्वरूप का चित्रण श्रीमद्भागवत में हुआ है। भागवत ही एक मात्र ग्रन्थ है जिसमें कृष्ण चरित्रांकन पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। श्रीकृष्ण की बाल-लीला और प्रेम-लीला का मनोहारी चित्रण कवियों के चित्रांकन का आधार बना, जिससे कृष्ण के प्रेममय सौन्दर्य पक्ष से सम्बन्धित अनेक रूप अंकित हुए।

संस्कृत में राधा-कृष्ण के माधुर्यभाव को आधार मानकर १२वीं शती में जयदेव ने गीत गोविन्द की रचना की। इससे पूर्व शिव-पार्वती ही शृंगार एवम् भक्ति के प्रमुख आराध्यदेव थे। जयदेव ने राधा-कृष्ण के रूप में काव्य जगत् को नवीन नायक-नायिका प्रदान किये, जिसमें नायक कृष्ण सांसारिक भोग विलास में लिप्त मानव आत्मा की प्रतीकात्मक छवि हैं और राधा दिव्य प्रज्ञान की। इसी उदात्त रूप की कल्पना करके जयदेव ने जिस माधुर्यरूप को प्रतिष्ठित किया उससे परवर्ती बसोहली-कांगड़ा चित्रकारों को विभिन्न भावांकन में बड़ी मदद

मिली है। १५ वीं शताब्दी में विद्यापति के काव्य ने समाज में भक्ति स्वरूप को राधा-कृष्ण के माध्यम से अंकित किया। इन पर जयदेव के गीतगोविन्द का पूर्ण प्रभाव है। १५वीं शताब्दी में ही आचार्य भानुदत्त ने अपने संस्कृत काव्य ग्रन्थ "रसमंजरी" में राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंगों को मानवीय रूप में अंकित करके नायक-नायिका भेद विषयों को मौलिक रूप में प्रस्तुत किया। समस्त पहाड़ी राज्यों में सर्वप्रथम बसोहली शैली ने "रसमंजरी" को चित्रित कर रोमान्टिक कल्पना को साकार रूप में प्रस्तुत किया। बसोहली शैली में चित्रित रसमंजरी के नायक कृष्ण को एक जैसे रूप में प्रस्तुत किया जिसकी रूपाकृति उन पहाड़ी राजाओं का प्रतिरूप है जो अन्तःपुर में स्वच्छन्द प्रेम क्रीड़ाओं के अभ्यस्त थे। इस सबका संबल पाकर विविध मनोरम हृदयग्राही चित्र—बसोहली, कांगड़ा, गुलेर, चम्बा, नूरपुर, जम्मू, बिलासपुर, मण्डी,सुकेत, कुल्लू, मानकोट, सिरमौर, अर्की, गढ़वाल आदि शैलियों में चित्रित हुए। इसके साथ ही ब्रजनाथ, चतुर्भुजदास, देवदत्त, जायसी, हर्ष, मतिराम, लच्छीराम, सेनापति, बहादुर, सुन्दरदास, मौलाराम आदि की रचनाओं में इसी प्रवृत्ति का विकास-विस्तार पाया जाता है। इस चित्रण की पृष्ठभूमि में निश्चित ही संस्कृत हिन्दी काव्य की समृद्ध काव्यधारा थी। काव्य एवम् चित्रकला के सुन्दर गुणों के समन्वयकारी स्वरूप द्वारा कृष्ण चरित्रांकन ने कलाकारों को सदैव प्रेरित किया।

अवतारी कृष्ण की बाल-लीलाएं तो भागवत, विष्णु, हरिवंश आदि पुराणों में बड़े विस्तार से की गई हैं। बाल लीलाओं की ओर पहाड़ी समाज विशेष रूप से आकर्षित हुआ। कलाकारों ने इन लीलाओं को अपनी कला में रूपायित करके, कलाकृतियों को अमरत्व प्रदान किया। चित्रों में बाल कृष्ण के रूप सौन्दर्य का अंकन विभिन्न क्रीड़ा और चेष्टाओं का चित्रण, संस्कार-उत्सव आदि का विवरण तथा अलौकिक घटनाओं का अंकन माता यशोदा के माध्यम से हुआ है।

गोपाल कृष्ण, श्रीकृष्ण का दूसरा प्रमुख स्वरूप रहा है जिसमें प्रकृति के सुरम्य वातावरण में गौ चारण, वंशी-वादन, आंख मिचौनी, जलक्रीड़ा, जंगल में सामूहिक भोज, प्रातः काल गौ चारण हेतु वन गमन, सन्ध्या को घर लौटना आदि अनेक कार्य कलापों के असंख्य चित्रांकन द्रष्टव्य हैं। लीलाधर कृष्ण के शैशव काल की वीर गाथाओं में— पूतना वध, कालिय-दमन, वकासुर-वध, अघासुर-वध, तृणावर्त-त्राण, यमलार्जुन-उद्धार, वत्सासुर-वध, व्योमासुर-वध, दावाग्नि-पान, देवराज इन्द्र का मान मर्दन, गोवर्धन धारण, अजगर से नन्द बाबा को छुड़ाना, अरिष्टासुर-वध, चाणुर मल्ल का निपात, कंस-वध आदि अनेक लीलाएं अलौकिक स्वरूप को दर्शाती हैं।

गोपाल कृष्ण की रूपश्री का वर्णन करने में रीति-कवियों ने शब्दार्थ का चमत्कार तो खड़ा करके भगवान श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतारी आसन से नीचे उतारकर प्रेम और शृंगार की लौकिक भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। फलस्वरूप श्रीकृष्ण अवतार न होकर गली-गली के रसिया—प्रेमोन्मुक्त गोपियों से घिरे कृष्ण हो गए। श्रीकृष्ण का यही रूप सर्वाधिक लोकप्रिय चित्रांकन का आधार रहा। इन चित्रों में प्रेम व यौवनावस्था राधा-कृष्ण के माध्यम से नायक-नायिका भेद के रूप में चित्रित हुए। इनमें केलि, विलास-रास, गलबाहीं डाले वन-विहार, अधरपान करना, कुंज में बैठकर प्रेमालाप करना, एक-दूसरे की प्रतीक्षा करना, दूतिका द्वारा संदेश भेजना, मिलन की युक्तियां खोजना, छेड़छाड़, आलिंगन पाश में कसना, राधिका को वस्त्रहीन कर रतिरण में जूझना आदि चित्रों में रसिक कृष्ण और राधा के अनुभवों का सूक्ष्म चित्रण करने में कलाकारों ने विशेष रूचि ली है।

विश्वविख्यात पहाड़ी चित्रकला ने अपने वात्सल्य, भक्ति एवं शृंगार के मधुरतम मनोभावों को अंकित कर दर्शकों को अभिभूत कर दिया। शृंगारिक रूपाकारों के चित्रण में रीति काव्य से बड़ी सहायता ली गयी है, जिसमें नायक-नायिका की उस सनातन नियति की ओर संकेत है जो मानवीय जीवन के ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने में एक-दूसरे के पूरक होकर समर्पित हैं। यही प्रेम का साध्य है, जिसे मानव मन की लालसाओं में सबमें बड़ा आधारभूत मानकर बार-बार चित्रण हुआ है।

[१४/१४३८, किशनपुरा, पुल जोगियान सहारनपुर उ० प्र०]

उषा-अनिरुद्ध चित्र-सीरीज़ कथा

बाणासुर भगवान शिव के कथनानुसार किसी आने वाले योद्धा से लड़ने को तत्पर था। उसे अपनी सुन्दर कन्या उषा का रहस्य मालूम न था। वह सोच भी नहीं सकता था कि वही उसके पतन का कारण बनेगी।

उषा महल की चार दीवारी में पाली गयी एक सुन्दर कन्या थी। मन्त्री की बेटी चित्रलेखा उसकी सबसे प्यारी सखी थी। वे दोनों बचपन से साथ खेली, पढ़ी थीं और अब जवान होने पर भी एक दूसरी के मन की बात जानती थीं। एक दिन चित्रलेखा ने उषा को विचारों में खोया देखा। उसका चेहरा परेशान था और लम्बी-लम्बी सांसें ले रही थी।

'क्या बात है उषा,' चित्रलेखा ने पूछा। 'क्या तुम अस्वस्थ हो? क्या किसी ने तुम्हें कुछ कहा है?'

'नहीं-नहीं,' उषा ने जवाब दिया। 'लेकिन चित्रा मैं तुम्हें क्या बताऊं मेरे साथ अजीब घटना घटी है।'

'मुझे बताओ, यह वैसी अद्‌भुत तो नहीं होगी,' उसकी सखी ने कहा।

'मैं नहीं कह सकती, तुम मुझ पर विश्वास न करोगी,' उषा बोली।

'मुझ पर यकीन करो सखी, मैंने तुम पर कब विश्वास नहीं किया।"

'हां, लेकिन मेरे साथ ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हूं। तुम हंसोगी नहीं, यह वादा करो,' उषा ने अपनी सहेली से कहा। 'यकीन करो, मुझे सुनने दो क्या बात है,' चित्रलेखा की इस बात पर उषा थोड़ी देर खामोश रही और कान में बोली—'बाकी सबको बाहर भेजो।' चित्रलेखा ने दासियों को विभिन्न बहानों से बाहर भेज दिया और उषा के बिस्तर पर बैठकर उसका हाथ पकड़कर स्नेह से सुनाने को कहा।

'चित्रा, कई रातों से मुझे स्वप्न में एक युवक दिखाई देता है। उसकी आंखें पानी के गहरे जलाशयों की तरह हैं जिनमें मैं डूबी लगती हूं। उसका शरीर तालाबों के नीले कमल जैसा है और लम्बी भुजाएं स्नेह से मेरा आलिंगन करती हैं। चित्रा, मैं मानती हूं वह मेरा प्रेमी है, मैं भी उससे प्रेम करती हूं। मेरे स्वप्नों का वही सबकुछ है। लेकिन वह असल है चित्रा, असल। मैं उसे कहां ढूंढ सकती हूं।' यह कहते हुए उषा रो पड़ी और चित्रा उसे सान्त्वना देती रही।

क्रमशः
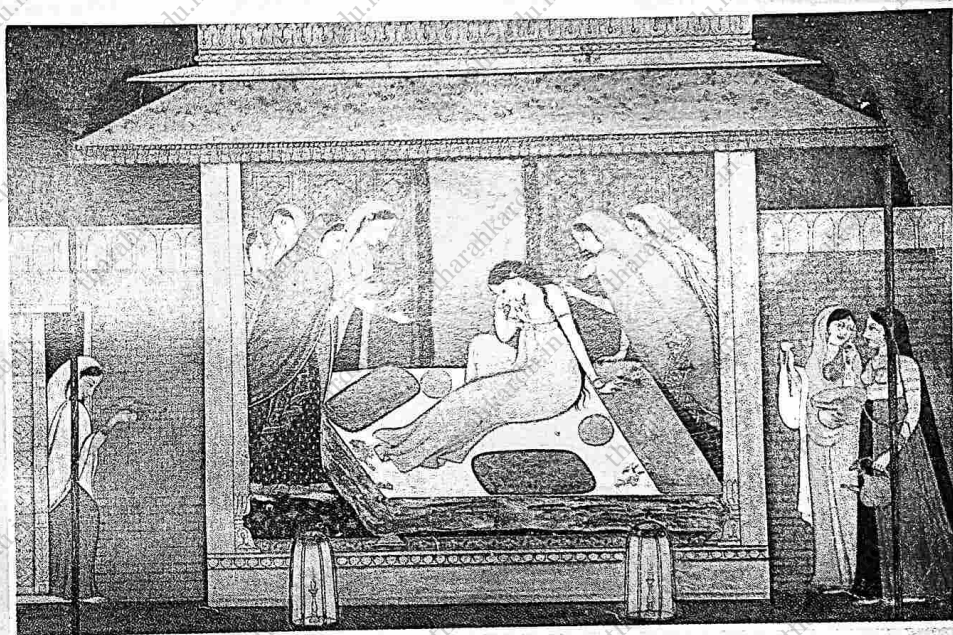
नींद से जागी स्वप्न विभोर उषा

भूरिसिंह संग्रहालय, चंबा में सुरक्षित उषा-अनिरुद्ध चित्र-सीरीज (१७७०-१७७५) का छटा चित्र

VIPASHA

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला-१ द्वारा प्रकाशित तथा
जोशी मुद्रणालय, शिमला-[illegible]